(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २॥) | एक अंक का

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम०ए

वर्ष ९] मथुरा, १ मई सन् १९४८ ई० [अंक

वेदमाता गायत्री की महिमा !

सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो स्मृताः।
ताभ्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा॥—याज्ञवल्क्य०

वेदों का सार गुह्य उपनिषद् हैं, उपनिषदों का सार गायत्री तथा तीन व्याहृतियां हैं।

यथा मधु च पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः।
एवं हि सर्व वेदानां गायत्री सारमुच्यते॥—मनु०

जिस प्रकार पुष्पों का शहद, दूध का घी, रसों का दूध सार है, उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री को कहा जाता है।

गायत्री वेद जननी गायत्री पाप नाशिनी।
गायत्र्यास्तु परन्नास्ति दिवि चेह च पावनम्॥—व्यासः०

गायत्री वेदों की माता है, गायत्री पाप नाश करने वाली है, अतः गायत्री से श्रेष्ठ पृथ्वी तथा स्वर्ग में भी पवित्र करने वाला और कोई नहीं है।

गायत्री अंक के सम्बन्ध में

गायत्री को वेद माता कहा गया है। उसके गर्भ में महान ज्ञान और अनन्त साधन भरे हुए हैं। उन सब का विस्तार विविधि शास्त्रों ने विभिन्न ऋषियों ने विभिन्न प्रकार से किया है। इन भिन्नताओं का साहित्य इतना बड़ा है कि उस सबका संकलित करना कठिन है। फिर यदि संकलित भी कर दिया जाय तो उनका समन्वय करके उनका-क्रम, पात्रत्व, क्षेत्र, भूमि आदि को समझना हर किसी के लिये सुगम नहीं है।

इतने विस्तार में न जाकर हमने एक ही ग्रन्थ को हाथ में लिया है और उस की वर्णित एक ही प्रणाली को पाठकों के सामने उपस्थित किया है। "गायत्री संहिता" के एक एक श्लोक में गायत्री विज्ञान का महत्वपूर्ण मर्म छिपा हुआ है। उस मर्म को यथा मति संक्षेप में लिखने का हमने प्रयत्न किया है। इस एक प्रणाली के आधार पर प्राप्त हुआ ज्ञान पाठकों के लिए अधिक सुविधा जनक होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

हमारे कितने ही कृपालु मित्रों और विद्वान सज्जनों ने गायत्री साधनाओं के संबंध में कितने ही लेख भी भेजे हैं, पर उनको इसलिए न छापा जा सकता कि कितनी ही विधियों का वर्णन होने से पाठकों की उलझन बढ़ती और इनमें से किसे ग्रहण करें और किसे त्यागें इस द्विधा में पड़ कर उन्हें बुद्धि विक्षेप में पड़ना होता। साधकों के लिए एक ही प्रणाली निष्ठा उत्पन्न कर सकती है, इस लिए इस अंक में ऐसा ही प्रयत्न हुआ है।

हम चाहते थे कि एक ही सुविस्तृत अंक मे गायत्री संबंधी सब पाठ्य सामग्री उपस्थित की जाती और उसे सब प्रकार सुन्दर सचित्र एवं सुसज्जित बनाया जाता, पर हमारे साधन बहुत सीमित हैं। अखंड ज्योति जितने पृष्ठों में निकल रही है उतने पृष्ठ देते हुए भी उसे अपना खर्च पूरा करने में बड़ी कठिनाई होती है फिर अधिक घाटे की पूर्ति किस प्रकार की जाय? आज की कागज की मँहगाई, दुर्लभता, तथा साधनों की कमी के कारण वैसा न किया जासका। काम चलाऊ उपाय के रूप में यह करना पड़ा कि उस पाठ्य सामिग्री को मई, जून और जुलाई में तीन अंकों में पूरा किया जारहा है। इन अंकों को गायत्री अंक के तीन भाग कहा जा सकता है। इन तीन भागों में कुल मिला कर पाठकों को गायत्री के संबंध में एक क्रमबद्ध और महत्व पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जायगी।

पाठकों से निवेदन

जुलाई के अंक में अखंड ज्योति में गायत्री सम्बन्धी अनुभव छपेंगे। साधकों को गायत्री की उपासना करने से जो लाभ हुए हैं उनका विस्तृत वर्णन भेजने का अनुरोध है। अखण्ड ज्योति के पाठक इस दिशा में एक कार्य कर सकते हैं कि वे उन साधकों के पास जिन्होंने गायत्री की साधना की हो, अखण्ड ज्योति के प्रतिनिधि की तरह उनके पास जा कर उनसे उनके अनुभव पूछें, और कहां अन्यत्र भूतकाल में किसी को इस साधना से जो लाभ हुए हों उनका संग्रह करके भेजें। आशा है कि पाठक अपनी पत्रिका के लिए इस दिशा में [illegible] करेंगे।

वेदमाता गायत्री

मथुरा १ मई सन् १९४८

आदि शक्ति को प्रणाम।

ह्रीं श्रीं क्लींचेति रूपेभ्य स्त्रिभिर्वालोक पालिनी।
भासते सततं लोके गायत्री त्रिगुणात्मिका ॥१॥

(ह्रीं, श्रीं, क्लीं) ह्रीं, श्रीं, क्लीं (इति) इन (त्रिभिः) तीन (रूपेभ्यः) रूपों से (लोक पालिनी) संसार का पालन करने वाली (त्रिगुणात्मक) गायत्री (लोके) संसार में (सततं) निरन्तर (भासते) प्रकाशित होती है।

आदि शक्तिरियं विष्णोस्तामहं प्रणमामिहि।
सर्गः स्थितिर्विनाशश्च जायन्ते जगतोऽनया ॥२॥

(इयंतु) यह ही (विष्णोः) परमात्मा की (आदि शक्तिः) आदि शक्ति है (तां) उसको (अहं) मैं (प्रणमामि) प्रणाम करता हूं (अनया) इसी शक्ति से (जगतः) संसार का (सर्गः) निर्माण (स्थितिः) पालन (च) और (विनाशः) विनाश (जायन्ते) होता है।

सृष्टि के प्रारंभ का मूल हेतु परमात्मा की 'द्विधा' है। एक अव्यय परमात्मा ने जब बहुत होने की इच्छा की, तो वह इच्छा-स्फुरणाशक्ति कहलाई। इस प्रकार अद्वैत ब्रह्म द्वैत होगया। वह अखंड, अलख, अगोचर, इन्द्रियातीत, निराकार निर्विकार परमात्मा जब सृष्टा के रूप में आता है तो उसे द्विधा देखा जाता है। लक्ष्मी नारायण, सीताराम, राधेश्याम, उमाशंकर, माया ब्रह्म, शक्ति शिव, आदि नामों से उसे पुकारते हैं।

सूर्य अपने कक्ष में, अपनी एक रस गतिविधि से क्रिया मग्न रहता है। किसी के प्रति राग द्वेषात्मक भावनायें उसमें नहीं है, परन्तु उसकी किरणें दौड़ती हुई पृथ्वी तक आती हैं और क्षेत्र, ऋतु, वातावरण तथा जीवों की स्थिति के अनुकूल विविधि प्रकार के प्रभाव डालती है। सप्तवर्ण की किरणें विविधि गुणों से युक्त होती हैं। जो सूर्यचिकित्सा विज्ञान के रहस्य को जानते हैं उन्हें पता है कि सूर्य की विविधि करणों में गुणों की कितनी भिन्नता है। एक व्यक्ति को एक प्रकार की सूर्य किरणें अमृतोपम लाभ प्रदान करती हैं तो दूसरे प्रकार की किरणें हानिकारक परिणाम उपस्थित कर सकती है। सूर्य एक है, उसकी शक्ति किरण भी एक ही है। पर सूक्ष्म भेदों के कारण उसके सूक्ष्म प्रभावों में भारी अन्तर उत्पन्न होजाता है।

परमात्मा एक है उसकी शक्ति एक है। पर जिस प्रकार परमात्मा एक से दो होगया उसी प्रकार उसकी शक्ति एक से तीन हो जाती है। इन तीन का नाम आध्यात्म विद्या के सूक्ष्म दर्शियोंने ह्रीं, श्रीं, क्लीं रखा है। यह शब्द काल्पनिक नहीं है। वरन् सृष्टि के सूक्ष्म शान्त अन्तराल में इस त्रिविधि शक्ति की प्रतिध्वनियां हैं। योगियों ने समाधि अवस्था में जाकर प्रकृति की मूलभूत-सूक्ष्म स्थिति का अनुभव किया। वहां तीर्थ राज प्रयाग की तरह तीन धारायें प्रवाहित होती हैं। सत् मयी धारा में निमग्न होने पर योगी को एक सूक्ष्म शब्द सुनाई पड़ता है। जैसे कांसे की घड़ियाल में हलकी सी हथौड़ी मार देने पर वह झनझनाती रहती है और उसके अन्त में ई कार और अनुस्वार का सम्मिलित 'हलका सा 'ई' शब्द गूंजता रहता है इसी प्रकार सतोगुणी धारा में

ह्रीं, रजोगुणी में 'श्रीं' तमोगुणी भी 'क्लीं' शब्द गूँजता हुआ अनुभव में आता है।

यह धाराएं अपनी कार्य प्रणाली के कारण एक दूसरे से भिन्न भी प्रतीत होती हैं। ह्रीं, उत्पादक है, श्रीं पोषक है, क्लीं संहारिणी है। इसी से उन्हें क्रमशः ब्राह्मी, नारायणी और शांभवी भी कहा जाता है। पुल्लिंग शब्दों में उन्हीं शक्तियों को ब्रह्मा विष्णु और महेश कहा जासकता है। गुणों के विभाग में इन्हें सत्, रज, तम कहा जायगा।

ब्रह्म की आदि शक्ति का नाम गायत्री है। वह त्रिगुणात्मक है। ब्रह्म परायण साधक उसके ह्रीं रूप की आराधना करते हैं, अध्यात्मिक उन्नति के लिए, आत्म साक्षात्कार के लिए, परमानन्द और मुक्ति के लिए उसी का आश्रय ग्रहण किया जाता है। अर्थ परायण—किसी कामना की पूर्ति के इच्छुक—सांसारिक संपदा और ऐश्वर्य चाहने वाले साधक उसके श्रीं रूप की उपासना करते हैं। तमोगुणी तांत्रिक, मारण मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि अभिचारों में क्लीं तत्व का पुरश्चरण किया जाता है। ह्रीं—सरस्वती के रूप में, श्रीं—लक्ष्मी के रूप में, क्लीं दुर्गा के रूप में पूजी जाती है। जो साधक जिस गुण की उपासना करता है उसमें उन्हीं तत्वों का आविर्भाव विशेष रूप से होता है। उसकी प्रकृति उसी ढांचे में ढलती है, स्वभाव वैसा बनता है, योग्यतायें और शक्तियां वैसी ही बढ़ती हैं, तथा उसी के अनुरूप सफलताओं का मार्ग प्रशस्त होता है।

अपने में किन्हीं गुण, कर्म, स्वभावों की उत्पत्ति के लिए ह्रीं का, किन्हीं तत्वों की वृद्धि के लिए श्रीं का, और किन्हीं दोष दुर्गुणों के निवारण के लिए क्लीं का आराधन किया जाता है। समय समय पर—भलेबुरे सभी प्रकार के प्रयोजनों के लिए, उपयोगितानुसार तीनों ही तत्वों की आवश्यकता होती है। क्योंकि मनुष्य तीनों ही तत्वों का बना हुआ है। प्रयोजन, आवश्यकता, उपयोगिता तथा मात्रा के भेद से इन तत्वों में न्यूनाधिकता तो प्रयोजनीय होती है पर उपास्य तीनों ही हैं। इसलिए त्रिमुखी वेदमाता गायत्री को साधक अभिवादन, प्रणाम, नमस्कार करता है।

किसी के प्रति श्रद्धा, सम्मान, उच्च भावना, प्रतिष्ठा की स्थापना अपने मनमें करने से ही उसकी ओर खिंचाव, आकर्षण, प्रेम तथा निष्ठा की उत्पत्ति होती है। और इस उत्पत्ति के आधार पर ही साधन में प्रीति होती है, मन लगता है, उत्साह बढ़ता है तथा दृढ़ता रहती है। इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सर्व प्रथम गायत्री माता को श्रद्धा और विश्वास पूर्वक प्रणाम किया जाता है।

सतोगुणी ब्राह्मी शक्ति।

परमात्मनस्तु या लोके ब्रह्म शक्तिर्विराजते।
सूक्ष्मा च सात्विकी सैव गायत्री त्यभिधीयते ।३।

(लोके) संसार में (परमात्मनः) परमात्मा की (या) जो (सूक्ष्मा) सूक्ष्म (च) और (सात्विकी) सात्विक (ब्रह्मशक्तिः) ब्रह्मशक्ति (विराजते) विद्यमान है (सैव) वह ही (गायत्री इति) गायत्री (अभिधीयते) कही जाती है।

प्रभावादेव गायत्र्या भूतानामभिजायते।
अन्तः करणेषु दैवानां तत्वानां हि समुद्भवः ॥४॥

(भूतानां) प्राणियों के (अन्तःकरणेषु) अन्तः करणों में (दैवीनां) दैवी (तत्वानां) तत्वों का (समुद्भवः) प्रादुर्भाव (गायत्र्याः) गायत्री के (एव) ही (प्रभावात्) प्रभाव से होता है।

गायत्री परमात्मा की वह शक्ति है जो सृष्टि में चैतन्यता, सजीवता, विचार शक्ति के तत्वों को उत्पन्न करती है। मूल में यह सत है। ब्रह्म से उत्पन्न शक्ति भी मूलतः ब्राह्मी ही है, उसमें ब्रह्मत्व ओत प्रोत है। इस ब्रह्मत्व को धारण करने से मनुष्य ब्राह्मण बन जाता है। गायत्री वह ब्राह्मी शक्ति है जो सात्विक उच्च आध्यात्मिक तत्वों का धारण किये हुए है। मूल में वह ऐसी ही है। विकारों के संमिश्रण से वह दूसरे प्रकार की भी हो जाती है, रज और तम से भी अच्छादित होजाती है। अग्नि मूलतः शुद्ध तेज तत्व है। पर उसमें विषैले दूषित दुर्गन्धित पदार्थ डाल दिये जांय तो उसका वर्ण एवं गुण भी वैसा ही बन जाता है। गायत्री—चैतन्यता—मूलतः परमात्म तत्व से संबंधित होने के कारण देवत्व से परिपूर्ण है। परन्तु रज और तम के समन्वय से वह उस रूप में भी प्रकट होती है। रजोगुण के समन्वय से उसका रूप लक्ष्मी हो जाता है, तमोगुण के मिश्रण से वह दुर्गा के रूप में प्रकट होती है।

हंस वाहिनी—सरस्वती—गायत्री का दूसरा नाम है। हंस दूध पीता है पानी को छोड़ देता है। हंस वाहिनी गायत्री भी शुद्ध सतोगुण धारण करती है। विशुद्ध तेज के समान, सूर्य के समान, अपने मूल स्वरूप में दीप्त मान रहती है। इसलिए आध्यात्मिक सुख चाहने वाले, आत्मोन्नति की आकांक्षा करने वाले गायत्री की उपासना करते हैं। अग्नि में सुगंधित पदार्थ डालने से उसमें से सुगंधित धुंआं निकलता है और उसमें दुर्गंधित पदार्थ जलाने से दुर्गंधि फैलती है। मूलतः अग्नि गंध रहित है। चैतन्य तत्व भी मूलतः सतोमय है पर धन, ऐश्वर्य एवं भोग वैभव की इच्छाओं के कारण वह लक्ष्मी बन जाती है और संघर्ष, विनाश, रक्षा, आक्रमण की स्थिति में वह दुर्गा कही जाती है। इस प्रकार एकही चैतन्यता शक्ति, सरस्वती (गायत्री) लक्ष्मी तथा दुर्गा के रूप में भी दृष्टि गोचर होती है। संसार भरके प्राणियों में व्यापक चैतन्यता—आत्म प्राप्ति, ऐश्वर्य (लोभ) तथा संघर्ष इन तीन कार्यों में लगी हुई है। इन तीन कार्यों के असंख्यों रूप हैं, असंख्यों कार्यक्रम है असंख्यों आयोजन हैं, पर धारायें तीन ही हैं।

इतना सब होते हुए भी गायत्री के मूल स्वरूप में कोई विकार नहीं आता। ब्रह्म-सत्, चित् आनन्द स्वरूप है, सत्य, शिव, सुन्दर है। उसकी चैतन्यता ब्राह्मी शक्ति भी इन्हीं गुणों से परिपूर्ण है। बादल धूलि, वर्षा, ग्रहण उदय अस्त, ऋतु परिवर्तन, स्थान विशेष आदि की स्थितियों के कारण सूर्य के रंग रूपों में भारी हेर फेर दृष्टि गोचर होता रहता है, तो भी सूर्य का मूल वर्ण अपरिवर्तन शील रहता है। इसी प्रकार संसार की चैतन्य शक्ति को, प्राणसत्ता को, प्राणधारी स्वेच्छा पूर्वक विविधि दिशाओं में प्रयोग करते हैं—इससे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कार्य करते हैं, तो भी मूलतः वह शक्ति अपने आपमें निर्विकार रहती है। रुपये को बुरे काम में भी खर्च किया जा सकता है, भले में भी। बिजली से लाभ भी उठाया जा सकता है और भारी अनिष्ट भी किया जासकता है। शास्त्रास्त्रों का सदुपयोग भी होसकता है और दुरुपयोग भी। इतना सब होते हुए भी रुपया बिजली एवं शस्त्रास्त्रों के मूलतत्व में कोई विकार नहीं आता।

संसार में चेतन्य सत्ता के बुरे, घृणित लोभ पूर्ण, भोग ऐश्वर्य अभिमुखी कार्यों में भी उपयोग होरहा है। गंगाजल से मांस भी पकाया जाता है और मदिरा भी बनाई जाती है। पर इतने मात्र से न तो गंगा के गौरव में कमी आती है और न गायत्री शक्ति का गौरव घटता है ब्राह्मी शक्ति—वस्तुतः ब्रह्म का ही प्रस्फुरण है ब्रह्म का जो गुण कर्म स्वभाव है वही ब्राह्मी का गायत्री का है। इस लिए वह सदा सतोमयी सात्विक, शुभ, शुद्ध, शिव, सुन्दर एवं सुख शान्ति मय ही रहती है। उसकी उपासना से इन्हीं गुणों की प्राप्ति होती है।

वेदमाता गायत्री।

गायत्र्येव मता माता वेदानां शास्त्र सम्पदाम्।
चत्वारोऽपि समुत्पन्ना वेदास्तस्या असंशयम्॥

(शास्त्र संपदां) शास्त्रों की सम्पत्ति रूप (वेदानां) वेदों की (माता) माता (गायत्र्येव) गायत्री ही (मता) मानी गई है (असंशयं) निश्चयसे (चत्वारोऽपि) चारों ही (वेदः) वेद (अस्याः) इससे (समुत्पन्नाः) उत्पन्न हुए हैं।

वेद कहते हैं ज्ञान को। ज्ञान के चार भेद हैं ऋत, यजु, साम और अर्थ। कल्याण, प्रभु प्राप्ति, ईश्वर दर्शन, दिव्यत्व, आत्म शान्ति, ब्रह्म निर्वाण, धर्म भावना, कर्तव्य पालन, प्रेम, तप, दया, उपकार, उदारता सेवा आदि ऋत के अन्तर्गत आते हैं। पराक्रम, पुरुषार्थ, साहस, वीरता, रक्षा, आक्रमण, नेतृत्व, यश, विजय, पद, प्रतिष्ठा, यह सब 'यजु' के अन्तर्गत हैं। क्रीड़ा, विनोद, मनोरंजन, संगीत, कला, साहित्य, स्पर्श, इन्द्रियों को स्थूल भोग तथा उन भोगों का चिन्तन, प्रिय कल्पना, खेल, गतिशीलता, रुचि, तृप्ति आदि को साम के अन्तर्गत लिया जाता है। धन, वैभव, वस्तुओं का संग्रह, शास्त्र, औषधि, अन्न, वस्त्र, धातु, गृह, वाहन, भृत्य आदि सुख साधनों की सामिग्रियां 'अर्थ' की परिधि में आती हैं।

किसी भी जीवित प्राणधारी को लीजिए, उसकी सूक्ष्म और स्थूल, बाहरी और भीतरी, क्रियाओं और कल्पनाओं का गम्भीर एवं वैज्ञानिक विश्लेषण कीजिए, प्रतीत होगा कि इन्हीं चार क्षेत्रों के अन्तर्गत उसकी समस्त चेतना परिभ्रमण कर रही है। (१) ऋत्-कल्याण, (२) यजु-पौरुष (३) साम-क्रीड़ा (४) अथर्व-अर्थ इन चार दिशाओं के अतिरिक्त प्राणियों की ज्ञान धारा और किसी ओर प्रवाहित नहीं होती। ऋत को धर्म, यजु को मोक्ष, साम को काम, अथर्व को अर्थ भी कहा जाता है। यही चार ब्रह्माजी के मुख हैं। ब्रह्मा को चतुर्मुखी इसीलिए कहा गया है कि वे एक मुख होते हुए भी चार प्रकार की ज्ञान धारा का निष्क्रमण करते हैं। वेद शब्द का एक अर्थ है—ज्ञान। इस प्रकार वेद एक है परन्तु एक होते हुए भी वह प्राणियों के अन्तःकरण में चार प्रकार का दिखाई देता है। इसलिए एक वेद को सुविधा के लिए चार भागों में विभक्त कर दिया गया। भगवान विष्णु की चार भुजाएं भी यही है। इन चार विभागों को स्वच्छा पूर्वक पार करने के लिए चार आश्रम और चार वर्णों की व्यवस्था की गई। बालक क्रीड़ा अवस्था में तरुण अर्थ अवस्था में, वानप्रस्थ पौरुष अवस्था में और सन्यासी कल्याण अवस्था में रहता है। ब्राह्मण ऋत है, क्षत्रिय यजु है, वैश्य अथर्व है, साम शूद्र है। इस प्रकार यह चातुर्विधि विभागीकरण हुआ है।

यह चारों प्रकार के ज्ञान उस एक चैतन्य शक्ति के ही प्रस्फुरण हैं जो सृष्टि के आरंभमें ब्रह्मा जी ने उत्पन्न की थी, और जिसे शास्त्र कारों ने गायत्री नाम से संबोधित किया है। इस प्रकार चारों वेदों की माता गायत्री हुई। इसीसे उसे 'वेदमाता' भी कहा जाता है। जिस प्रकार जल तत्व को बर्फ, भाप, (बादल-ओस, कुहरा आदि) वायु (हाइड्रोजन-नाइट्रोजन) तथा पतले पानी के चार रूपों में देखा जाता है। जिस प्रकार अग्नि तत्व को ज्वलन, गर्मी, प्रकाश तथा गति के रूप में देखा जाता है उसी प्रकार एक ज्ञान गायत्री के चार वेदों के चार रूपमें दर्शन होते हैं। गायत्री माता है तो चार वेद उसके चार पुत्र हैं।

यह तो हुआ सूक्ष्म गायत्री का सूक्ष्म वेदमाता स्वरूप। अब उसके स्थूल रूप पर विचार करेंगे। ब्रह्मा ने चार वेदों की रचना से पूर्व चौबीस अक्षर वाले गायत्री मंत्र की रचना की। इस एक मंत्र के एक एक अक्षर में ऐसे सूक्ष्म तत्व आधारित किये

गये जिनके पल्लवित होने पर चारों वेदों की शाखा प्रशाखायें तथा श्रुतियां उद्भूत होगई। एक वट बीज के गर्भ में महान वटवृक्ष छिपा होता है। जब वह बीज पौदे के रूप में उगता है, वृक्ष के रूप में बड़ा होता है तो उसमें असंख्यों शाखायें, टहनियां, पत्ते, फूल, फल लद जाते हैं, इन सबका इतना बड़ा विस्तार होता है—जो उस मूल वट बीज की अपेक्षा करोड़ों अरबों गुना बड़ा होता है। गायत्री के चौबीस अक्षर भी ऐसे ही बीज हैं जो प्रस्फुटित होकर वेदों के महा विस्तार के रूप में अवस्थित होगये हैं।

व्याकरण शास्त्र का उद्गम शंकरजी के वे चौदह सूत्र हैं जो उनके डमरू से निकल थे। एक बार महादेवजी ने आनन्द मग्न होकर अपना प्रिय वाद्य डमरू बजाया। उस डमरू में से चौदह ध्वनियां निकलीं। इन—(अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, आदि) चौदह सूत्रों को लेकर पाणिनी ने महाव्याकरण शास्त्र रच डाला। उस रचना के पश्चात् उसकी व्याख्यायें होते होते आज इतना बड़ा व्याकरण साहित्य प्रस्तुत है, जिसका एक भारी संग्रहालय बन सकता है! गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों से भी इसी प्रकार वैदिक साहित्य के अंग प्रत्यंगों का प्रादुर्भाव हुआ है। गायत्री सूत्र है, तो वैदिक ऋचायें उसकी विस्तृत व्याख्या हैं।

गायत्री की उत्पत्ति।

अनादि परमात्म तत्व से—ब्रह्म से—यह सब कुछ उत्पन्न हुआ है। सृष्टि उत्पन्न करने का विचार उठते ही ब्रह्म में एक स्फुरणा उत्पन्न हुई जिसका नाम है—शक्ति। शक्ति के द्वारा दो प्रकार की सृष्टि हुई एक जड़ दूसरी चैतन्य। जड़ सृष्टि का संचालन करने वाली शक्ति प्रकृति और चैतन्य सृष्टि को उत्पन्न करने वाली शक्ति का नाम सावित्री है।

पुराणों में वर्णन मिलता है कि सृष्टि के आदि काल में भगवान की नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ, कमल के पुष्प में से ब्रह्मा हुए, ब्रह्मा से सावित्री हुई, सावित्री और ब्रह्म के संयोग से चारों वेद उत्पन्न हुए। वेद से समस्त प्रकार के ज्ञानों का उद्भव हुआ। तदनन्तर ब्रह्मा जी ने पंच भौतिक सृष्टि की रचना की। इस अलंकारिक गाथा का रहस्य यह है कि निर्लिप्त, निर्विकार, निर्विकल्प परमात्म तत्व की नाभि में से—केन्द्र भूमि में से—अन्तःकरण में से—कमल उत्पन्न हुआ और वह पुष्प की तरह खिल गया। श्रुति में कहा है कि सृष्टि के आरंभ में परमात्मा की इच्छा हुई कि "एकोऽहं बहुस्याम" मैं एक से बहुत होजाऊँ। यह उसकी इच्छा, स्फुरणा, नाभिदेश में से निकल कर बाहर प्रस्फुटित हुई अर्थात् कमल का लतिका उत्पन्न हुई और उसकी कली खिलगई।

इस कमल पुष्प पर ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। यह ब्रह्मा, सृष्टि निर्माण की त्रिदेव शक्ति का प्रथम अंश है, आगे चलकर वह त्रिदेव शक्ति उत्पत्ति, स्थिति और नाश का कार्य करती हुई ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में दृष्टि गोचर होगी। आरंभ में कमल पुष्प पर केवल ब्रह्माजी ही प्रकट होते हैं क्योंकि सर्व प्रथम उत्पत्ति करने वाली शक्ति की आवश्यकता हुई।

अब ब्रह्माजी का कार्य आरंभ होता है। उन्होंने दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की एक चैतन्य दूसरी जड़। चैतन्य सृष्टि के अन्तर्गत वे सभी जीव आजाते हैं जिनमें इच्छा अनुभूति, अहंभावना पाई जाती है। चैतन्यता की एक स्वतंत्र सृष्टि है जिसे विश्व का प्राणमय कोष कहते है। निखिल विश्व में एक चैतन्य तत्व भरा हुआ है जिसे 'प्राण' नाम से पुकारा जाता है। विचार, संकल्प, भाव, इस प्राण तत्व के तीन वर्ग हैं और

सत, रज, तम यह तीन इसके वर्ण हैं। इन्हीं तत्वों को लेकर आत्माओं के सूक्ष्म, कारण और लिंग शरीर बनते हैं। सभी प्रकार के प्राणी इसी प्राण तत्व से चैतन्यता एवं जीवन सत्ता प्राप्त करते हैं।

जड़ सृष्टि के निर्माण के लिए ब्रह्माजी ने पंच भूतों का निर्माण किया। पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश के द्वारा विश्व के सभी परमाणु मय पदार्थ बने। ठोस (*Solid*) द्रव (*Liqued*) गैस (*Gas*) इतने तीन रूपों में प्रकृति के परमाणु अपनी गति विधि जारी रखते हैं। नदी, पर्वत, धातु, धरती आदि का सभी पसारा इन पंच भौतिक परमाणुओं का खेल है। प्राणियों के स्थूल शरीर भी इन्हीं प्रकृति जन्य पंच तत्वों के बने होते हैं।

क्रिया दोनों सृष्टियों में है। प्राण मय चैतन्य सृष्टि में अहंभाव, संकल्प और प्रेरणा की गति विधियां विविधि रूपों में दिखाई पड़ती हैं। भूत मय-जड़ सृष्टि में, शक्ति, हलचल और सत्ता इन आधारों के द्वारा विविधि प्रकार के रंग रूप, आकार प्रकार बनते बिगड़ते रहते हैं। जड़ सृष्टि का आधार परमाणु और चैतन्य सृष्टि का आधार संकल्प है। दोनों ही आधार अत्यन्त सूक्ष्म और अत्यन्त बलशाली है, इनका नाश नहीं होता—केवल रूपान्तर होता रहता है।

जड़ चेतन सृष्टि के निर्माण में ब्रह्माजी की दो शक्तियां काम कर रही हैं (१) संकल्प शक्ति (२) परमाणु शक्ति। इन दोनों में प्रथम संकल्प शक्ति की आवश्यकता हुई, क्योंकि बिना उसके चैतन्य का आविर्भाव न होता और बिना चैतन्य के परमाणु का उपयोग किस लिए होता। अचैतन्य सृष्टि तो अपने आपमें अन्धकार मय थी, क्योंकि न तो उसका किसी को ज्ञान होता और न उसका कोई उपयोग होता। 'चैतन्य' के प्रकटीकरण की सुविधा के लिए, उसकी साधन सामिग्री के रूप में 'जड़' का उपयोग होता है। अस्तु आरम्भ में ब्रह्माजी ने चैतन्य बनाया—ज्ञान का-संकल्प का-आविष्कार किया, पौराणिक भाषा में यों कहिए कि सर्व प्रथम वेदों का उद्घाटन हुआ।

पुराणों में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मा के शरीर से एक सर्वाङ्ग सुन्दर तरुणी उत्पन्न हुई, वह उनके अंग से उत्पन्न होने के कारण उनकी पुत्री हुई। इस तरुणी की सहायता से उन्होंने अपना सृष्टि निर्माण कार्य जारी रखा। इसका पश्चात् उस अकेली रूपवती युवती को देखकर उनका मन विचलित होगया और उन्होंने उससे पत्नी के रूप में रमण किया। इस मैथुन से मैथुनी-संयोगज-परमाणुमयी—पंच भौतिक-सृष्टि उत्पन्न हुई। इस कथा के आलंकारिक रूप को, रहस्य मय पहेली को, न समझ कर कई व्यक्ति अपने मनमें प्राचीन तथ्यों को उथली और अश्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि ब्रह्मा कोई मनुष्य नहीं है और न उससे उत्पन्न हुई शक्ति पुत्री या स्त्री है और न पुरुष स्त्री की तरह उनके बीच में समागम होता है। यह तो सृष्टि निर्माण काल के एक तथ्य को गूढ़ पहली के रूप में अलंकारिक ढंग से प्रस्तुत करके कवि ने अपनी कला कारिता का परिचय दिया है।

ब्रह्मा, निर्विकार परमात्मा की वह शक्ति है जो सृष्टि का निर्माण करती है। इस निर्माण कार्य को चालू रखने के लिए उसकी दो भुजाएं हैं जिसे संकल्प शक्ति तथा परमाणु शक्ति कहते हैं। संकल्प शक्ति, सतोगुण संभव है, उच्च आत्मिक तत्वों से सम्पन्न है इसलिए उसे सुकोमल, शिशु सी पवित्र-पुत्री कहा है। यही पुत्री गायत्री है। अब इस दिशा में कार्य होचुका चैतन्य तत्वों का निर्माण होचुका तो ब्रह्माजी ने अपनी निर्माण शक्ति की सहायता से मैथुनी सृष्टि को-संयोगज परमाणु प्रकृया को, आरंभ कर दिया, तब वह स्त्री के रूप में पत्नी के रूप में कही गई, तब उसका नाम सावित्री हुआ। इस प्रकार गायत्री और सावित्री पुत्री तथा पत्नी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

———

आत्मबल और परमात्मा की प्राप्ति।

गायत्र्युपासनाकरणादात्म शक्तिर्विवर्धते ।
प्राप्यते क्रमशोऽजस्य सामीप्यं परमात्मनः ।।

(गायत्र्युपासनाकरणात्) गायत्री की उपासना करने से (आत्म शक्तिः) आत्मबल (विवर्धते) बढ़ता है । (क्रमशः) धीरे धीरे (अजस्य) जन्म बन्धन रहित (परमात्मनः) परमात्म की (सामीप्य) समीपता (प्राप्यते) प्राप्त होती है।

पीछे बताया जा चुका है कि त्रिगुणात्मक और चतुर्विधि होते हुए भी गायत्री का मूल स्वरूप ब्रह्मवत् है। सात्विक है । उपासना में उसके इस मूल रूप की ही धारणा की जाती है। इसलिए उपासक के अन्तःकरण में सत् तत्वों की ही वृद्धि होती है।

जिस विचार धारा में मनुष्य परिभ्रमण करता है, वैसा ही स्वयं बनने लगता है । जो आदर्श सिद्धान्त, लक्ष, श्रद्धापूर्वक अन्तःभूमि में धारण किये जाते हैं उनका एक सांचा तैयार होजाता है। इस सांचे में गीली मिट्टी की तरह मनुष्य ढलने लगता है और यदि कुछ समय लगातार, दृढ़ता एवं सत्कार पूर्वक यह प्रयत्न जारी रहे तो जीवन पकी हुई प्रतिमूर्ति की तरह ठीक उसी प्रकार का बन जाता है।

चोरी, डकैती, ठगी, व्यभिचार, बेईमानी आदि दुष्कर्म कोई व्यक्ति एकायक नहीं कर बैठता, विचार बहुत समय पूर्व से उसके मन में चक्कर लगाते हैं, इससे धीरे धीरे उसकी प्रवृत्ति इस ओर ढलती जाती है और एक दिन वह सफल बदमाश बन जाता है। यही बात भलाई के मार्ग में होती है। बहुत समय तक स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन करने के उपरान्त उत्तम विचारों के संस्कार दृढ़ होते हैं तब कहीं प्रत्यक्ष जीवन में वे लक्षण प्रकट होते हैं और वह वैसा बन जाता है। गायत्री की साधना से सतोगुण की ब्राह्मी भावनाएं अन्तः प्रदेश में अपना केन्द्र स्थापित करती हैं। उन भावनाओं के अनुरूप आन्तरिक जीवन बन जाता है और उसी प्रकार की प्रवृत्तियां वाह्य जीवन में भी दृष्टि गोचर होती हैं।

पदार्थ विज्ञान के ज्ञाताओं को विदित है कि समान श्रेणी के पदार्थों की सहायता से सूक्ष्म तत्वों का आकर्षण और प्रकटीकरण होसकता है। गंधक, फास्फरस, पुटास, सरीखे अग्नि तत्व प्रधान पदार्थों का अमुक प्रक्रिया के साथ संघर्ष करने से विश्वव्यापी सूक्ष्म अग्नितत्व चिनगारी के रूप में प्रकट होजाता है। तांबे और जस्ते के तारों को अमुक मसालों के साथ संबंधित करने से उनमें बिजली की धारा बहने लगती है। इसी प्रकार शब्द और विचारों की सहायता से चैतन्य तत्वों का आकर्षण और प्रकटी करण होसकता है। एक लेखक या वक्ता एक विशेष अनुभूति के साथ लोगों के सामने अपने विचार इस प्रकार रखता है कि वे विविधि भावावेशों में डूबने उतराने लगते हैं। हंसते को रुलादेना और रोते को हंसा देना कुशल वक्ता के बांए हाथका खेल है। इसी प्रकार क्रोध, घृणा, प्रतिहिंसा या दया, क्षमा, उपकार आदि के भावावेश शब्द और विचारों की सहायता से किसी व्यक्ति में पैदा किया जा सकता है।

इस प्रकार भावनाओं का आवागमन, शब्द और विचारों की सहायता से होता है, संगीत, नृत्य, गान, रोदन, हुंकार, गर्जना, गाली, ललकार विनय, मुसकराहट, अट्टहास, तिरस्कार, अहंकार से सने हुए शब्द सुनने वालों के मन में विविधि प्रकार के भाव उत्पन्न करते हैं। और उन भावों से उत्तेजित होकर मनुष्य बड़े बड़े दुस्साहस पूर्ण कार्य कर डालते हैं । अब विचार कीजिए कि

शब्द तो एक ध्वनि मात्र थी, उसने सुनने वाले को कुछ से कुछ कैसे बना दिया ? बात यह है कि शब्द और विचार मिलकर एक ऐसा शक्तिशाली माध्यम बन जाते हैं जो सूक्ष्म चैतन्य जगत में से उसी प्रकार के तत्वों को खींच लाते हैं और जिस स्थान पर उन्हें पटका गया था वहां प्रकट होजाते हैं। दूसरों के ऊपर ही नहीं—अपने ऊपर भी अमुक प्रकार के चैतन्य तत्वों को इसी माध्यम द्वारा भरा जासकता है। इस प्रकट है कि परमाणुमय भौतिक जगत की भांति, संकल्पमय चैतन्य जगत में भी वैसे माध्यम मौजूद हैं जो अदृश्य तत्वों और शक्तियों को खींच लाते हैं और उनका प्रत्यक्षीकरण कर देते हैं।

गायत्री की शब्दावली एक ऐसा ही माध्यम है। इसकी शब्द श्रृंखला का गुंथन इस प्रकार हुआ है कि उसका उच्चारण होते ही, कुछ विशिष्ट प्रकार की भावना ग्रंथियां उत्तेजित होती हैं और यह मंत्रोच्चारण एक ऐसा शक्तिशाली माध्यम सूत्र बन जाता है जिसके द्वारा गायत्री की ब्राह्मी शक्ति सूक्ष्म लोक से खिंच खिंच कर मनुष्य के अन्तःकरण में जमा होने लगती है और वह दिव्य तत्वों से ओत प्रोत होने लगता है।

आत्मा परमात्मा का एक स्फुलिंग है। उसे सजातीय पदार्थ का सान्निध्य मिलता है तो उसकी शक्ति बढ़ना स्वाभाविक है। यह एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि "निर्जीव वस्तुऐं एक और एक मिलकर २ और सजीव प्राणी एक और एक मिलकर ११ होजाते हैं।" चैतन्य तत्व से बना हुआ आत्मा—जड़ पदार्थों के संचय से, धन दौलत से सम्पन्न होने पर बलवान नहीं बनता उसमें बल तो तब बढ़ता है जब सूक्ष्म—चेतना का अधिक संचय उसके समीप एकत्रित होता है। गायत्री मंत्र द्वारा यही कार्य होता है। आत्मा के समीप सत्, चित और आनन्द मय तत्वों का भण्डार प्रचुर मात्रा में जमा होने लगता है। यह संचय ही आत्मबल कहलाता है। इस प्रकार वेदमाता गायत्री की कृपा से साधक आत्म बल सम्पन्न बन जाता है।

नौनिद्धियों की प्राप्ति।

शौचं शान्तिर्विवेकश्चैतल्लाभ त्रयमात्मिकम्।
पश्चादावाप्यते नूनं सुस्थिरं तदुपासकम्॥

(सुस्थिरं) मनको वश में रखने वाले (तदुपासकः) उस गायत्री के उपासक को (पश्चात्) बाद में (शौच) पवित्रता (शान्तिः) शान्ति (च) और (विवेकः) विवेक (एतत्) ये (आत्मिकं) आत्मिक (लाभत्रयं) तीन लाभ (नूनं) निश्चय से (आवाप्यते) प्राप्त होते हैं।

कार्येषु साहसः स्थैर्यं कर्मनिष्ठा तथैव च।
एते लाभाश्चवै तस्माज्जायन्तेमानसास्त्रयः॥

(कार्येषु साहसः) कार्यों में साहस (स्थैर्यं) स्थिरता (तथैवच) और वैसे ही (कार्यनिष्ठा) कार्यनिष्ठ (एते) ये (त्रयः) तीन (लाभाः) लाभ (मानसाः) मन संबंधी (तस्मात्वै) उससे (जायन्ते) प्राप्त होते हैं।

पुष्कलं धनसमृद्धिः सहयोगश्च सर्वतः।
स्वास्थ्यं वा त्रय एतेस्युस्तस्माल्लाभाश्चलौकिकाः॥

(पुष्कलं) पर्याप्त (धन समृद्धिः) धन की समृद्धि (सर्वतः) सब ओर से (सहयोगः) सहयोग (च) और (स्वास्थ्यं वा) स्वस्थता (एते) ये (त्रयः) तीन (लौकिकाः) सांसारिक (लाभाः) लाभ (तस्मात) उससे (स्यु) होतेहैं।

साधारण शारीरिक बल से सम्पन्न व्यक्ति अपने बहुबल से बड़े बड़े कठिन कार्य कर डालता है और आश्चर्य जनक सफलताऐं प्राप्त कर लेता है, फिर आत्म बल सम्पन्न व्यक्ति के बारे में तो कहना ही क्या है। शरीर जड़ पदार्थों का बना

हुआ है, उसका बल भी जड़ एवं सीमित है। यह सीमा इतनी छोटी है कि पशु पक्षी और छोटे दर्जे के जीवजन्तु भी इस दृष्टि से बलवान से बलवान मनुष्य की अपेक्षा अधिक बलवान होते हैं। कुत्ते की सी घ्राणशक्ति, हिरन की सी चौकड़ी, बैल जैसी मजबूती, सिंह जैसी वीरता, मनुष्य में कहां होती है? और मछली की तरह जल में तथा पक्षियों की तरह हवा में वह आवागमन कहां कर सकता है? फिर भी मनुष्य सब प्राणियों से श्रेष्ठ—सृष्टि का मुकट मणि बना बैठा है इसका कारण उसका आत्मिक बल ही है।

यह आत्मिक बल, गायत्री तत्व को अधिक मात्रा में धारण करने से प्राप्त होता है। इस धारणा के और भी अनेक उपाय हैं जिनके द्वारा संसार के महापुरुषों ने अपने को आत्मिक बल से सम्पन्न बनाकर बड़े बड़े पुरुषार्थ किये हैं, उन अनेक उपायों में से एक सर्व सुलभ उपाय आध्यात्म विद्या के पारंगत आचार्यों ने ढूँढ़ निकाला है। उस उपाय का नाम है—गायत्री साधना। इस साधना से आत्मा में सात्विक चैतन्यता की मात्रा बढ़ती जाती है, फलस्वरूप जीवन की सभी दिशाओं में उसका प्रगति-परिचय मिलने लगता है। जब शरीर में रक्त बढ़ता है तो हाथ, पांव, छाती, नाक, गाल, ओठ, सभी में चैतन्यता, पुष्टि और लालिमा दृष्टि गोचर होने लगती है। जब कमरे में प्रकाश जलता है तो सभी खिड़कियों में से उसकी रोशनी बाहर निकलती है। आत्मा में जब बल बढता है तो वह भी कई दिशाओं में उत्साह वर्धक ढंग से प्रकट होता है।

जीवन की प्रमुख दिशायें तीन होती हैं (१) आत्मिक (२) बौद्धिक (३) सांसारिक। इन तीनों दिशाओं में आत्मबल बढ़ने से आनन्द दायक परिणाम प्राप्त होते हैं। इन तीनों दिशाओं में तीन तीन लक्षण ऐसे दिखाई पड़ते हैं जिनसे जीवन सर्व सुखी बन जाता है। इन नौ सम्पदाओं को नव निद्धि भी कह सकते हैं। सिद्धियां देवताओं को प्राप्त होती हैं, ऋद्धियां असुरों को मिलती है और निद्धियां मनु की सन्तान मानव प्राणी को प्राप्त होती हैं। आत्मिक क्षेत्र की तीन निद्धियां (१) विवेक (२) पवित्रता (३) शान्ति हैं। बौद्धिक क्षेत्र की (१) साहस (२) स्थिरता (३) कर्तव्य निष्ठा है। और सांसारिक क्षेत्र की तीन निद्धियां (१) स्वास्थ्य (२) समृद्धि (३) सहयोग हैं। यह नौ लक्षण जीवन की सफलता के हैं। इन्हीं नौ गुणों को ब्राह्मण के नव गुण बताया है। भगवान रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ने पर क्रुद्ध परशुरामजी से उनके नव गुणों की प्रशंसा करके उन्हें प्रसन्न किया था।

"नवगुण परम पुनीत तुम्हारे।"

(१) विवेक—जब आत्मा में गायत्री तत्व की स्थापना होती है तो अन्त:करण में विवेक जागृत होता है। सत्-असत् का भेद स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं। शास्त्र, सम्प्रदाय, वर्ग, संस्कार स्वार्थ आदि की बहार दीवारियों को छलांग कर सत्य का दर्शन करने वाली ऋतम्भरा बुद्धि जागृत होजाती है। उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म, के भेद को अनेकों व्यक्ति ठीक प्रकार नहीं समझ पाते। थोड़ी सी अड़चन से उनकी बुद्धि अर्जुन की भांति मोह-ग्रस्त होजाती है, परन्तु जिसमें विवेक की मात्रा बढ़ गई है, वह भ्रमित नहीं होता। वस्तुस्थिति की गहराई तक वह आसानी से पहुंच जाता है सूक्ष्म मेधा, तत्व दृष्टि अथवा ऋतम्भरा बुद्धि से उसका आत्मा सम्पन्न होता है यह प्रथम निद्धि है।

(२) पवित्रता—भीतरी और बाहरी दो प्रकार की पवित्रता होती है। छल, कपट, दुराव असत्य, दंभ आदि के कारण अन्तः प्रदेश गंदा होजाता है। भीतर कुछ तथा बाहर कुछ भाव रहने से मनोभूमि में गंदगी भर जाती है इसकी दुर्गन्ध कलुषता से नाना प्रकार के अन्तरिक रोग उपज पड़ते हैं। ऐसे लोग-चोरी, व्यभिचार शोषण, अनीति, लोभ, क्रोध, मद, मत्सर आदि घातक शत्रुओं के आसानी से शिकार होजा

हैं। गायत्री तत्व की वृद्धि के कारण यह आन्तरिक अपवित्रता नष्ट होती है और स्वभाव बालकों की तरह सरल कोमल, स्वच्छ, निष्कपट बनता है। जो बात पेट में वही बाहर—जो बाहर वही पेट में। इस प्रकार के निष्कपट स्वभाव वाले व्यक्तियों का अन्तःकरण बड़ा निर्मल रहता है और निर्मल हृदय में अपने आप दैवी सम्पदाओं का निवास होने लगता है।

बाह्य पवित्रता की दिशा में भी ऐसे मनुष्यों की अभिरुचि विशेष रूप से आकृष्ट रहती है। स्थान की, शरीर की, वस्त्रों की, प्रयोजनीय वस्तुओं की सफाई की ओर उनका बड़ा ध्यान रहता है। प्रकृति के बनाये हुए सुन्दर स्वच्छ पदार्थों में उन्हें स्वभावतः प्रेम होजाता है। बालक, वृक्ष, पौदे, पशु, पक्षी, नदी, पर्वतों की सुन्दरता उन्हें बहुत सुहाती है। उनका दृष्टिकोण स्वच्छ—पवित्र होने से उन्हें विचारों की, कार्यों की, साधनों की स्वच्छता ही पसंद आती है।

(३) शान्ति—साधारण लोग जहां साधारण हानि लाभ से उत्तेजित, अशान्त व्याकुल एवं बेकाबू होजाते हैं। हर्ष, शोक, क्रोध, निराशा, भय, चिन्ता, मद आदि के तूफान उनके भीतर छोटी छोटी घटनाओं के कारण उठते रहते हैं, जिससे उनके चित्त में सदा अस्थिरता रहती है, विश्राम न मिलने के कारण आत्मा को बड़ा क्लेश रहता है। परन्तु अन्तः प्रदेश में गायत्री तत्व की अधिकता होजाने से यह स्थिति नहीं रहती। परिवर्तन शील संसार, वस्तुओं का अवश्यम्भावी रूपान्तर, त्रिगुणात्मक सृष्टि का वैचित्र्य जब उनकी समझ में भली प्रकार आजाता है। फिर उन्हें न हर्ष का न शोक का, कोई भी अवसर व्यथित नहीं बनाता। बाह्य विक्षोभ आजाय तो भी उनका मानसलोक शान्त रहता है। ऐसी शान्ति को द्वन्दातीत, स्थिति प्रज्ञ, समत्व, योग, परमानन्द आदि नामों से पुकारते हैं।

(४) साहस—शक्तियां होते हुए भी कितने ही मनुष्य आत्म हीनता, तुच्छता, दीनता, संकोच, कायरता आदि मानसिक कमजोरियों के कारण सदा डरते झिझकते रहते हैं और कठिनाई चाहे कितनी ही छोटी हो पर वे उसे बहुत बड़ा मान बैठते हैं और अपने को उसे पार करने में असमर्थ अनुभव करते हैं। यह साहस हीनता बौद्धिक जगत में एक ऐसी आपत्ति है जिसके कारण अनेकों प्रकाशवान् दीपक असमय में ही बुझ जाते हैं, अनेकों सुरभित मन हारिणी कलियां अपने जौहर प्रकट करने से पहले ही मुर्झा जाती हैं। योग्यताओं का अभाव जीवनोन्नति में जितना बाधक होता है उससे कहीं अधिक बाधक साहस का अभाव होता है। यह अन्धकार गायत्री तत्व की आध्यात्मिक किरणें प्रकाशित होने के साथ २ विलीन होता चलता है। साधक क्रमशः अधिक स्वावलम्बी, आत्मविश्वासी, साहसी, निर्भय बनता है। वह न किसी को त्रास देना पसंद करता है और न सहना। आत्म गौरव से, आध्यात्मिक महानता से उसका मनोलोक आलोकित हो उठता है, तदनुसार वह मनुष्योचित अधिकारों के लिए संघर्ष, प्रयत्न और परिश्रम करता हुआ, परतंत्रताओं के बन्धनों को काटता हुआ स्वतंत्रता की ओर—मुक्ति की ओर—द्रुत गति से अग्रसर होता है और आत्मोन्नति के लौकिक और पारलौकिक आनन्द प्राप्त करता है।

(५) स्थिरता—डांवाडोल, अस्थिर वृत्तियों के मनुष्यों की जीवन यात्रा एक दिशा में नहीं चलती, फलस्वरूप उनका समय, श्रम और बल निरर्थक खर्च होता रहता है। विचार, विश्वास, सिद्धान्त, कार्य, लक्ष, स्वभाव एवं निष्ठा की एक रसता होने से जीवन प्रवाह एक नियत दिशा में प्रवाहित होता है और बूंद बूंद से घट भर जाने की उक्ति के अनुसार उसे अपने कार्य में सफलता मिलती है। चित्त में स्थिरता रहने से मस्तिष्क नियत दिशा में सोचता और कार्य मग्न रहता है फल स्वरूप उस क्षेत्र में अनेकों उन्नति के अवसर मिलते हैं। स्थिरता का आध्यात्मिक अर्थ है—मनोजय, आत्म निग्रह, समाधि। इस

मार्ग में प्रगति होने साथ साथ सांसारिक और आत्मिक सुख शान्ति के द्वार खुलने लगते हैं।

(६) कर्तव्य निष्ठा—इसे धर्म भावना अथवा ईश्वर परायणता कहते हैं। मानव जीवन की सर्व श्रेष्ठता प्राप्त होने के साथ साथ प्राणी को एक भारी उत्तर दायित्व भी सौंपा गया है, जिसे धर्म-कर्तव्य कहते हैं। यह कर्तव्य पालन ही जीवन का सच्चा मूल्य है। इसे चुकाये बिना कोई आत्मा न तो शान्ति लाभ कर सकती है और न सद्गति प्राप्ति कर सकती है। अपने आत्मा के प्रति, मस्तिष्क के प्रति, शरीर के प्रति, कुटुम्ब के प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र ईश्वर एवं समस्त संसार के प्रति, मनुष्य के कुछ कर्तव्य, उत्तर दायित्व, धर्म होते हैं। असंख्यों व्यक्ति उन्हें जानते तक नहीं, जो जानते हैं उनमें से असंख्यों उन्हें पूरा नहीं करते, फल स्वरूप उन्हें वे दुखद परिणाम भुगतने पड़ते हैं जिन्हें नरक, बन्धन, आदि नामों से पुकारा जाता है। गायत्री शक्ति की धारणा से यह धर्म भावना जागृत होती है फल स्वरूप साधक के विचार, कार्य और आयोजन धर्म केन्द्र के चारों ओर परिभ्रमण करने लगते हैं। और वह ऐसा धर्मात्मा बनता जाता है जिसे सच्चा मनुष्य, देशभक्त, लोक सेवी, भला मानुष, सभ्यनागरिक, कर्तव्य निष्ठ एवं ईश्वर भक्त भी कह सकते हैं।

(७) स्वास्थ्य—उत्तम स्वास्थ्य मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। कुछ अपवादों को छोड़ कर आमतौर से प्रकृति माता सभी को स्वस्थ शरीर प्रदान करती है। किन्तु लोग उसे मिथ्या आहार विहार के द्वारा बिगाड़ लेते हैं। यह बिगाड़ जब तक चलता रहता है तब तक स्वास्थ्य में विकृतियां बनी ही रहती हैं। एक रोग गया—दूसरा आया। एक दवा बन्द हुई-दूसरी आरंभ करनी पड़ी। यह क्रम तब तक नहीं टूट सकता जब तक कि आहार विहार में प्राकृतिकता न आवे, सतोगुण न बढ़े। गायत्री से सतोगुण बढ़ता है और जीवनक्रम में संयम एवं सुव्यवस्था का प्रमुख भाग रहने लगता है तदनुसार स्वास्थ्य में सुधार आरंभ होजाता है और वह दिन दिन अधिक सुधरने लगता है।

(८) समृद्धि—अनेक दोषों पापों, कुटेवों, व्यसनों में फंसे हुए व्यक्ति पूर्व संचित समृद्धि को भी गँवाते हैं। बुरे स्वभाव, उलटे दृष्टि कोण, अस्थिर मस्तिष्क के कारण उनके लाभदायक कार्य भी हानिकारक सिद्ध होते हैं। उनके खर्च बहुत बढ़े हुए और निरर्थक होते हैं, तदनुसार तामसिक वृत्ति के मनुष्य सच्चे अर्थों में कभी समृद्धि शाली नहीं बन सकते। किसी प्रकार नीति अनीति का विचार छोड़कर वे पैसे जमा कभी लें तो वह पैसा उनके लिए चिन्ता, अशान्ति क्लेश और दोष दुर्गुणों की वृद्धि करने वाला—कष्ट कारक ही सिद्ध होता है। इसके विपरीत जिनके अन्दर गायत्री तत्व की अधिकता है उनका मानसिक संतुलन ठीक रहने से कार्यों में दूर दर्शिता की मात्रा अधिक रहती है। फल स्वरूप वे सम्पन्नता की ओर बढ़ते हैं। मितव्ययता, ईमानदारी और परिश्रम शीलता के कारण वे गरीब नहीं रह पाते। अनीति से धनवान हुए लोगों की तरह वे अमीर नहीं भी बन पावें तो भी उनकी थोड़ी ही पूंजी सदुपयोग में आकर अमित आनन्द दायक बनती है। और वे थोड़े धन से भी भारी अमीरी से अधिक समृद्धिशाली होने का सुख प्राप्त करते हैं।

(९) सहयोग—बुरे लोगों से वे लोग भी भीतर ही भीतर डरते और घृणा करते रहते हैं जो कारण वश उनसे मित्रता रखते हैं। इसके विपरीत खरे, ईमानदार, सद्गुणी, प्रसन्नचित्त, स्थिरमति, मधुरभाषी, सेवाभावी, सुखी, प्रसन्न व्यक्ति की ओर सबका मन आकर्षित होता है। ध्वनि की प्रतिध्वनि की भांति प्रेम का प्रत्युत्तर प्रेम से, सेवा का सेवा से, सहयोग का सहयोग से मिलता है। इस प्रकार गायत्री साधक को अनेक सच्चे मित्र और सच्चे सहयोगी मिल जाते हैं। उन्नति के अवसर सहयोगियों की

सहायता से ही मिला करते हैं। जिसे अधिक लोगों का सहयोग प्राप्त है उसको न केवल सांसारिक वरन् मानसिक सुख शान्ति की भी उपलब्धि होती है।

यह नौ निद्धियां यज्ञोपवीत के नौ तार हैं। गायत्री की शरण में जाना द्विजत्व को प्राप्त करना है। जो द्विज इस नौ तार के यज्ञोपवीत को धारण करता है उसे उनसे संबंधित, उन नौ गुणों की प्रतिध्वनि स्वरूप यह नौ निद्धियां प्राप्त होती हैं! यह जीवन के सर्वोत्तम लाभ हैं। यह जितने अंशों में मनुष्य को प्राप्त होते जाते हैं उतने ही अंशों में साधक अपने को स्वर्गीय सुखों से सम्पन्न अनुभव करने लगता है।

भूतल पर स्वर्गीय सुख।

गायत्र्युपासकस्वान्ते सत्कामाउद्भवन्तिहि।
तत्पूर्तयेऽभिजायन्ते सहजं साधनान्यपि॥

(हि) निश्चय से (गायत्र्युपासकस्वान्ते) गायत्री के उपासक के हृदय में (सत्कामाः) सदिच्छाऐं (उद्भवन्ति) पैदा होती हैं (तत्पूर्तये) उनकी पूर्ति के लिए (सहजं) आसानी से (साधनानि अपि) साधन भी (अभिजायन्ते) पैदा होते हैं।

त्रुटयः सर्वधादोषा विघ्नायान्ति यदान्तताम्।
मानवो निर्भयं याति पूर्णोन्नतिपथं तथा॥

(यदा) जब (सर्वधा) सब प्रकार के (दोषाः) दोष (त्रुटयः) कमियां (विघ्नाः) और विघ्न (अन्ततां) विनाश को (यान्ति) प्राप्त होजाते हैं (तदा) तब (मानवः) मनुष्य (निर्भयं) निर्भय होकर (पूर्णोन्नतिपथं) पूर्ण उन्नति के मार्ग पर (याति) चलता है।

वाह्यश्चाभ्यन्तरमस्य नित्यं सन्मार्गगामिनः।
उन्नतेरुभयं द्वारं यात्युन्मुक्त कपाटताम्॥

(नित्यं) नित्य (सन्मार्ग गामिनः) सन्मार्ग पर चलने वाले (अस्य) इस व्यक्ति के (वाह्यं) वाह्य (च) और (आभ्यन्तरं) भीतरी (उभयं) दोनों (उन्नतेः) उन्नति के (द्वारं) द्वार (उन्मुक्तकपाटतांयाति) खुल जाते हैं।

गायत्री की साधना से मनुष्य के अन्तःकरण में एक मौलिक परिवर्तन होता है। उसकी वृत्तियां—इन्द्रिय भोग, धन संचय, अहंकार, मनोरंजन, मोह, स्वार्थ, द्वेष जैसी तुच्छ तृष्णाओं से विमुख हो जाती हैं, उनमें कुछ भी रस प्रतीत नहीं है, और न इनकी पूर्ति का लाभ कोई वास्तविक लाभ दिखाई देता है। इस अज्ञान के, माया के, भोगवाद के, बन्धन शिथिल पड़ जाते हैं और आध्यात्मिक रसों में आनन्द आने लगता है। इसकी इच्छाऐं लोक सेवा, परोपकार, दया, प्रेम, उदारता, त्याग, संयम, धर्म सेवन, सतोगुण परायणता एवं ईश्वर प्राप्ति की ओर मुड़ती हैं और दिन दिन इसी मार्ग पर बढ़ती चली जाती हैं।

इस परिवर्तन के फलस्वरूप साधक उस प्रकार नहीं सोचता, उस प्रकार की कामनाऐं नहीं करता, जिस प्रकार से कि मोहग्रस्त साधारण जीव किया करते हैं। रूपवती रमणी, स्वादिष्ट भोजन, महल, मोटर, सन्तान, सेवक, धन दौलत के खजाने, प्रतिष्ठा, पदवी, हुकूमत आदि की इच्छाऐं लोग किया करते हैं कोई वस्तु कितनी ही उचित मात्रा में उन्हें प्राप्त क्यों न हो पर सन्तोष नहीं होता। अधिक! अधिक!! और अधिक!!! के लिए उनकी तृष्णा बढ़ती रहती और कितना ही प्राप्त होजाने पर भी वह शान्त नहीं होती। इसी अशान्ति में मनुष्य सदा जलते, कुढ़ते और रोते कलपते रहते हैं। भौतिक पदार्थ संसार में इतनी मात्रा में ही परमात्मा ने पैदा किये हैं कि वे सबके हिस्से में कामचलाऊ भाग आसके। सर्वग्राही—अनन्त तृष्णा की पूर्ति होसके इतनी मात्रा में पदार्थों की उत्पत्ति ही

नहीं हुई है फिर वे मिल ही कैसे सकते हैं? दूसरे योग्यता, प्रयत्न, आवश्यकता, पात्रत्व, प्रारब्ध, परिस्थिति, कर्मभोग आदि कारणों से भौतिक पदार्थों की, सांसारिक परिस्थितियों की वैसी स्थिति प्राप्त नहीं हो पाती, जैसी की सर्व सुख सम्पन्न, सर्व मनोकामनापूर्ण अवस्था मनुष्य प्राप्त करना चाहता है। तीसरे उस मोह ग्रस्त मनुष्य की शारीरिक और मानसिक दशा ऐसी विपन्न होती है कि प्राप्त वस्तुओं का सुखभोगने में वह असमर्थ रहता है और तृष्णा की रट लगा लगा कर अपना गला सुखाता रहता है। ऐसे मूढ़ मायाबद्ध जीव—किसी न किसी कारण वश जीवन भर रोते कलपते रहते हैं और अन्त में अशान्त, अतृप्त एवं दुखी मन से अपनी जीवन यात्रा समाप्त करते हैं। परन्तु गायत्री का साधक अपने परिवर्तित दृष्टि कोण के कारण इस प्रपंच से बचा रहता है। उसकी इच्छायें सात्विक होने के कारण स्वाभाविक, सीमित और स्वल्प श्रम साध्य होती हैं जिनकी पूर्ति आसानी से हो जाती है।

विवेकवान व्यक्ति सोचता है। जीवन इस लिए नहीं मिला है कि उसे भौतिक पदार्थों की असंभव तृष्णा के ऊपर उत्सर्ग कर दिया जाय। भौतिक पदार्थों की, साधन सामिग्रियों की, आवश्यकता इसलिए है कि उनकी सहायता से उद्देश्य पूर्ति के पथ पर चलने में सुविधा और सहायता मिले। पर यदि वे सहायक होने के स्थान पर भार स्वरूप बन जांय, उन्हीं की उलझनों में उद्देश्य नष्ट होजाय तो इन साधन सामिग्रियों के होने से, न होना ही अच्छा। यात्री लोग रास्ते के लिए अक्सर भोजन साथ में रखते हैं, क्योंकि इससे भूख के समय—तुरंत आवश्यकता पूर्ति होजाती है, यह बुद्धिमत्ता भी है। परन्तु यदि कोई यात्री एक दो मन भोजन की गठरी बांधकर सिर पर रखले और उसके बोझ से नानाविधि कष्ट सहता हुआ यात्रा करे तो इसे मूर्खता ही कहा जायगा। विवेकवान् व्यक्ति सोचता है कि भौतिक सामिग्रियों की निष्प्रयोजन तृष्णा करने से यात्रा के उद्देश्य में बाधा ही उपस्थित होगी इसलिए वह केवल बहुत ही सीमित, आवश्यकता पूर्ति भर के, लिए वस्तुएं चाहता है जिनकी पूर्ति ईश्वरीय विधान के अनुसार आसानी से होजाती है। यदि कारण वश इन सामिग्रियों में कोई कमी रह जाती है तो वह अपने सन्तोष, त्याग, तितीक्षा, तपश्चर्या, अपरिग्रह आदि गुणों के कारण उस अभाव को अनुभव न करता हुआ हर दशा में प्रसन्न रहता है।

जिन कामनाओं की पूर्ति के लिए, मनोवाञ्छा को तृप्त करने के लिए, अज्ञानी मनुष्य हर घड़ी लालायित, चिन्तित रहते हैं, मनौती मनाते हैं, देवी देवताओं को पूजते हैं, आकाश पाताल में कुलावे लगाते हैं और उसी गोरखधन्धे में जीवन के बहुमूल्य क्षणों की बरबाद कर लेते हैं। उनकी ओर ज्ञानवान व्यक्ति आंख उठाकर भी नहीं देखता। जिन वस्तुओं के अभाव में अज्ञानी छाती पीटता है, सिर धुनता है और हाय हाय करता है तथा जिनकी प्राप्ति पर हर्ष से उन्मत्त होजाता है, अहंकार से अकड़ जाता है, उन प्रपंचों की ओर ज्ञानी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रकार वह अनायास ही अज्ञानियों को सताने वाली, कामनाओं, इच्छाओं, तृष्णाओं की जलन से सहज ही छुटकारा पाजाता है। इस तरह उसके ऊपर से एक बड़ा भारी चिन्ताओं और मानसिक क्लेशों का बोझा उतर जाता है। दृष्टि कोण के परिवर्तन मात्र से सांसारिक लोगों को सताने वाले अधिकांश दुख, उस से स्वयमेव दूर भाग जाते हैं।

उसकी इच्छायें ऐसी होती हैं जो स्वयं अपने में एक आनन्द है। तृष्णाओंका चिन्तन करते समय एक बेचैनी, लालसा, एवं कमी का अनुभव होता है पर सेवा, संयम तथा परमार्थ का चिन्तन करने मात्र से—उनकी कल्पना इच्छा आयोजना करने मात्र से-हृदय में एक दैवी आनन्द का तरंगें उठने लगती हैं। उन इच्छाओं का पूर्ण होना

देवाधीन नहीं होता, परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करता वरन् पूर्णतया अपने हाथ में होता है। कोई व्यक्ति सत्य वादी, प्रेमी, उदार, सेवा भावी बनना चाहता है, दूसरों के लिए अपनी शक्तियां दान करना चाहता है, संयम से रहना चाहता है, प्रेम पूर्ण व्यवहार करना चाहता है, सदाचारी, खरा, ईमानदार बनना चाहता है तो इस में न कोई विघ्न है न किसी की सहायता की आवश्यकता है। इच्छा होते ही उसे कार्यरूप में परिणत किया जासकता है और क्रिया के साथ २ ही उस आत्म संतोष के दैवी आनन्द का फल चखा जासकता है।

उलटा दृष्टिकोण, भौतिक लक्ष, जब बदल जाता है तो मन, वचन और काया से कोई पाप कर्म नहीं बन पड़ता। भूलें, त्रुटियां, कमियां तभी होती हैं जब आदमी डूबता उतराता है, कभी इधर कभी उधर देखता है। किन्तु जब एक लक्ष स्थिर होगया, एक राज पथ पर यात्रा चल पड़ी, एक आदर्श के प्रति निष्ठा अचल होगई, तो न तो मन विचलित होता है और न भूलों की, त्रुटियों की गुंजायश रहती है। ऐसा एकनिष्ठ साधक निर्भय होता है, जहां सत्य है वहां भय कहां? जिसके विचार और कार्य सतोगुण से परिपूर्ण हैं उसे किसी से डरने की क्या जरूरत? ऐसा निर्भय, दृढ़चित्त, सत्य परायण मनुष्य पूर्ण उन्नति के वाह्य और आन्तरिक उन्नति के पथ पर तेजी के साथ बढ़ता चला जाता है।

उसकी आत्मा तो आनन्द सागर में निमग्न रहती ही है साथ ही सांसारिक सम्पदाओं की भी उसे कमी नहीं रहती। संयमी आहार विहार के कारण उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है दृष्टिकोण की शुद्धि के कारण मानसिक शान्ति का बाहुल्य रहता है, परिश्रम शीलता, जागरूकता और एकाग्रता के कारण उसके सब व्यापार अच्छे चलते हैं, मधुर उदारता पूर्ण व्यवहार के कारण अनेकों मित्र और सहयोगी मिल जाते हैं, ईमानदारी और सेवा भावना के कारण प्रतिष्ठा बढ़ती है, गति विधि का आधार सच्चाई होने के कारण निर्भयता रहती है। इन सब कारणों से धन ऐश्वर्य तथा उन सब वस्तुओं की भी साधक को कमी नहीं रहती जिनके लिए कि मोहग्रस्त व्यक्ति विलाप करते फिरते हैं। इन वाह्य सुखों के अतिरिक्त सत् परायण के आन्तरिक आनन्द का तो कहना ही क्या? इसका जीवन सब प्रकार आनन्द मय बन जाता है और इस भूतल पर ही उसे स्वर्गीय सुखों का रसास्वादन करने का अवसर मिलता है।

विपत्तियों से छुटकारा।

❀✱❀

काठिन्यं विविधं घोर ह्यापदां संहतिस्तथा।
शीघ्रं विनाशतां यान्ति विविधा विघ्नराजयः।

(विविधं) नाना प्रकार की (घोरं) घोर (काठिन्यं) कठिनाई (तथा) वैसे ही (हि आपदां) आपत्तियों का (संहति) समूह (विविधा) नाना प्रकार के (विघ्न राजयः) विघ्नों का समूह इससे (शीघ्रं) शीघ्र ही (विनाशतां यान्ति) नष्ट हो जाते हैं।

विनाशादुक्तशत्रूणामन्तः शक्तिर्विवर्धते।
संकटानामनायासं पारं याति तथा नरः।

(उक्त शत्रूणां) उपर्युक्त शत्रुओं के (विनाशात्) विनाश से (अन्तः शक्तिः) आन्तरिक शक्ति (विवर्धते) बढ़ती है (तथा) उस अन्त शक्ति से (नरः) मनुष्य (अनायासं) बिन परिश्रम के (संकटानां) संकटों के (पारं) पार (याति) होजाता है।

मनुष्य जीवन में अनेक प्रकार के कष्ट, विघ्न, दुर्दैव, सामने आते रहते हैं। दैविक दैहिक, भौतिक आपत्तियाँ सामने आती रहती हैं। अभी एक से छुटकारा प्राप्त हुआ नहीं कि दूसरा विघ्न

सामने आखड़ा हुआ। इस प्रकार आये दिन मनुष्य को विपत्तियों का, चिन्ता, शोक, भय, क्लेश, कलह, शोषण, उत्पीड़न आदि का शिकार होना पड़ता है और दुख की घटाएं ऊपर छाई रहती हैं, इस तरह आनन्द की प्राप्ति के उद्देश्य से स्वर्गादपि गरीयसी-धरती माता पर अवतीर्ण हुआ सुख स्वरूप आत्मा, स्वर्गीय सुख भोगने के स्थान पर नारकीय अनुभूतियों के साथ अपनी यात्रा पूरी करता है।

यह स्थिति अस्वाभाविक, अवांछनीय तथा अनुचित है। आत्मा आनन्द स्वरूप है उसकी यह उद्यान यात्रा—जीवन धारणा—भी आनन्द मय होनी चाहिए। दुख के कारण स्वाभाविक नहीं—अस्वाभाविक होते हैं, जिन्हें व्यक्ति अपनी भूल से, आलस्य से, अकर्मण्यता से, अपने ऊपर लादते हैं और दुखी बनते हैं। दुख के कारण तीन हैं (१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव। इन तीनों कारणों को जो जिस सीमा तक अपने से दूर करने में समर्थ होगा वह उतना ही सुखी बन सकेगा।

अज्ञान के कारण मनुष्य का दृष्टिकोण दूषित होजाता है, वह तत्वज्ञान से अपरिचित होने के कारण उलटा उलटा सोचता है और उलटे काम करता है, तदनुसार उलझनों में अधिक फँसता जाता है और दुखी बनता है। स्वार्थ, भोग, लोभ अहंकार, अनुदार और क्रोध की भावनाएं मनुष्य को कर्तव्यच्युत करती हैं और वह दूरदर्शिता को छोड़कर क्षणिक, क्षुद्र एवं हीन बातें सोचता है तथा वैसे ही काम करता है। फल स्वरूप उसके विचार और कार्य पाप मय होने लगते हैं। पापों का निश्चित परिणाम दुख है। दूसरी ओर अज्ञान के कारण वह अपने, दूसरों के, सांसारिक गति विधि के मूल हेतुओं को नहीं समझ पाता। फलस्वरूप असंभव आशाएं तृष्णाएं, कल्पनाएं किया करता है। इन उलटे दृष्टिकोणों के कारण साधारण सी, मामूली सी, बातें उसे बड़ी दुख मय दिखाई देती हैं, जिनके कारण वह रोता चिल्लाता रहता है। आत्मीयों की मृत्यु, साथियों की भिन्न रुचि, परिस्थितियों का उतार चढ़ाव, स्वाभाविक है, पर अज्ञानी सोचता है कि जो मैं चाहता हूं वही सदा होता रहे, कोई प्रतिकूल बात सामने आवे ही नहीं, इस असंभव आशा के विपरीत घटनाएं जब भी घटित होती है तभी वह रोता चिल्लाता है। तीसरे अज्ञान के कारण भूलें भी अनेक प्रकार की होती हैं, समीपस्थ सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है, यह भी दुख का एक हेतु है। इस प्रकार अनेकों दुख मनुष्य को अज्ञान के कारण प्राप्त होते हैं।

अशक्ति का अर्थ है—निर्बलता। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक, आत्मिक, निर्बलताओं के कारण, मनुष्य अपने स्वाभाविक, जन्मसिद्ध, अधिकारों का भार अपने कंधे पर उठाने में समर्थ नहीं होता, फल स्वरूप उसे उनसे वंचित रहना पड़ता है। स्वास्थ्य खराब हो, बीमारी ने घेर रखा हो, तो स्वादिष्ट भोजन, रूपवती तरुणी, मधुर गीत वाद्य, सुन्दर दृश्य निरर्थक हैं, धन दौलत का कोई कहने लायक सुख उसे नहीं मिल सकता। बौद्धिक निर्बलता हो तो—साहित्य, काव्य, दर्शन, मनन, चिन्तन का रस प्राप्त नहीं हो सकता। आत्मिक निर्बलता होतो सत्संग, प्रेम, भक्ति आदि का आत्मानंद दुर्लभ है। इतना ही नहीं निर्बलों को मिटा डालने के लिए प्रकृति का 'उत्तम की रक्षा' सिद्धान्त काम करता है। कमजोर को सताने और मिटाने के लिए अनेकों तथ्य प्रकट होजाते हैं। निर्दोष भलेऔर सीधे साधे तत्व भी उसके प्रतिकूल पड़ते हैं। सर्दी, जो बलवानों की बलवृद्धि करती है, रसिकों को रस देती है, वही कमजोरों को निमोनिया गठिया आदि कारण बन जाती है। जो तत्व निर्बलों के लिए प्राणघातक हैं, वे ही बलवानों को सहायक सिद्ध होते हैं। बेचारी निर्बल बकरी को जंगली जानवरों के लेकर—जगत् माता भवानी दुर्गा तक चटकर जाती है और सिंह को वन्य पशु ही नहीं बड़े बड़े सम्राट

तक अपने राज चिन्ह में धारण करते हैं । सत्य अहिंसा की पोषक, भारत सरकार तक ने एक नहीं तीन तीन सिंहों की प्रतिमा को अपना राजचिन्ह घोषित किया है। अशक्त हमेशा दुख पाते हैं, उनके लिए भले तत्व भी भय प्रद सिद्ध होते हैं ।

अभाव जन्य दुख है—पदार्थों का अभाव। अन्न, वस्त्र, जल, मकान, पशु, भूमि, सहायक, मित्र, धन, औषधि, पुस्तक, शस्त्र, शिक्षक आदि के अभाव में विविध प्रकार की पीड़ाएं, कठिनाइयां भुगतनी पड़ती हैं । उचित आवश्यकताओं को कुचल कर—मन मार कर बैठना पड़ता है और जीवन के महत्व पूर्ण क्षणों को मिट्टी के मोल नष्ट करना पड़ता है। योग्य और समर्थ व्यक्ति भी साधनों के अभाव में अपने को लुंज पुंज अनुभव करते हैं और दुख उठाते हैं ।

इन तीन कारणों से—अज्ञान, अशक्ति और अभाव से-ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं जो तुरन्त या देर सवेर में शारीरिक मानसिक सांसारिक एवं आकस्मिक दुखों की उत्पत्ति करती हैं। जिनमें ग्रसित होकर मनुष्य विविधि प्रकार के कष्ट सहता रहता है । परन्तु गायत्री की साधना से मनोभूमि का इस प्रकार विकाश होता कि ज्ञान, शक्ति और समृद्धि का बाहुल्य प्रत्यक्ष रूप से दृष्टि गोचर होने लगता है। इस वृद्धि के साथ साथ दुखों के मूल हेतु भी घटने लगते हैं, फल स्वरूप साधक अपने चारों ओर सुख शान्ति मयी परिस्थितियां बढ़ती हुई देखता है।

आपत्तियां एक प्रकार की ईश्वरीय चेतावनियां हैं, जिनसे ठोकर खाकर मनुष्य सजग हो और गलत मार्ग में पीछे लौटे। जब साधक गायत्री शक्ति को अपने अन्तःकरण में धारण करके सतोगुणी कार्य प्रणाली अपनालेता है तो उसके लिए चेतावनियों की, ठोकर देने की, ईश्वर को कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। पुराने संचित अशुभ संस्कार जो अभी प्रारब्ध रूप में परिणत नहीं हुए हैं, इस परिवर्तन की गर्मी से छोटे पौदे की तरह जलभुन जाते हैं। इस प्रकार बहुत से छोटे मोटे अशुभ संस्कारों का कुफल तो इस सत्य धारणा के तेज से ही भस्म होजाता है। जिन प्रचंड, दीर्घकालीन, भारी, बुरे कर्मों का फल प्रारब्ध बन चुका है, वह शीघ्रता एवं आसानी से भुगत जाता है। उसे भुगतते समय, अपनी आध्यात्मिक मस्ती के कारण साधक को विशेष कष्ट नहीं होता। क्योंकि जब कष्ट को कष्ट मानना ही छोड़ दिया तो वह व्यर्थ होजाता है। एक धनी का सब कुछ चला जाय और छोटी फूंस की झोंपड़ी में फटे पुराने कपड़े पहन कर, रूखा सूखा खाकर, गुजर करनी पड़े तो यह उसके लिए बड़े कष्ट की बात है । पर अनेकों मनुष्य ऐसे हैं जो चिरकाल से ऐसी ही हीन स्थिति में रहते आरहे हैं और प्रसन्न हैं । इससे सिद्ध है कि सुख दुख की वास्तविकता उतनी नहीं—जितनी कि उसकी मान्यता-प्रधान है । जब सतोगुणी व्यक्ति दुख को दुख नहीं मानता तो प्रारब्धों के भोग से दूसरों की दृष्टि में वह दुखी भले ही प्रतीत हो पर स्वयं उसे बुरा अनुभव नहीं होता । इसे प्रकार गायत्री साधना से सब प्रकार के दुखों का वस्तुतः नाश होजाता है।

गायत्री साधना से सतोगुण की वृद्धि होती है, आत्मबल उन्नत होता है फल स्वरूप उन तत्वों का शमन और दमन होता रहता है जो उन्नति और सुख शान्ति में बाधक होते हैं। स्वभाव और दृष्टिकोण में अन्तर आजाने से, उनके परिमार्जित होजाने से, अनेकों ऐसे कारण स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं, उनका अवसर ही नहीं आ पाता जिनके कारण दुख दारिद्र की पीड़ाएं मनुष्य को भुगतनी पड़ती हैं । विपत्ति और सम्पति प्रधानतः मान्यता का विषय है। एक व्यक्ति जिस स्थिति में रहते हुए प्रसन्नता पूर्वक जीवन यापन करता है दूसरा उसमें पहुंचने को एक विपत्ति अनुभव करता है। जब दृष्टि कोण में सतोगुणी, दार्शनिक परिवर्तन होजाता है तो मनुष्य के लिए कोई भी बात विपत्ति नहीं रहती। ——

अनिष्ट का कोई भय नहीं।

दयालुर्शक्ति सम्पन्ना माता बुद्धिमती यथा।
कल्याणं कुरुतेह्येव प्रेम्णा बालस्य चात्मनः॥
तथैव माता लोकानां गायत्री भक्त वत्सला।
विदधाति हितं नित्यं भक्तानां ध्रुवमात्मनः॥

(यथा) जैसे (दयालुः) दयालु (शक्ति सम्पन्ना) शक्ति शालिनी (च) और (बुद्धिमती) बुद्धिमान (माता) माता (प्रेम्णा) प्रेम से (आत्मनः) अपने (बालस्य) बालक का (कल्याणंह्येव) कल्याण ही (कुरते) करती है (तथैव) उसी प्रकार (भक्त वत्सला) भक्तों पर प्यार करने वाली (गायत्री) गायत्री (लोकानां) संसार की (माता) माता (ध्रुवं) निश्चय से (आत्मनः) अपने (भक्तानां) भक्तों का (नित्यं) सर्वदा (हितं) कल्याण (विदधाति) करती है।

कुर्वन्नपि त्रुटीर्लोके बालको मातरं प्रति।
यथा भवति कश्चिन्न तस्या अप्रीति भाजनः॥
कुर्वन्नपि त्रुटीर्भक्तिः कश्चिद् गायत्र्युपासने।
न तथा फलमाप्नोति विपरीतं कदाचन॥

(यथा) जिस प्रकार (लोके) संसार में (मातरं प्रति) माता के प्रति (त्रुटी) गलतियां (कुर्वन् अपि) करता हुआ भी (कश्चित्) कोई (बालकः) बालक (तस्याः) उस माता का (अप्रीति भाजनः) शत्रु (न भवति) नहीं होता (तथा) उसी प्रकार (गायत्र्युपासने) गायत्री की उपासना करने में (त्रुटीः) गलतियां (कुर्वन् अपि) करता हुआ भी (कश्चित्) कोई (भक्तः) भक्त (कदाचन) कभी भी (विपरीतं) विपरीत (फलं) फल को (न) नहीं (आप्नुते) प्राप्त होता।

मंत्रों की साधना की एक विशेष विधि व्यवस्था होती है। नियत साधना पद्धति से, निर्धारित कर्मकाण्ड के अनुसार, मंत्रों का अनुष्ठान, साधन, पुरश्चरण करना होता है। आमतौर से अविधि पूर्वक किया हुआ अनुष्ठान, साधक के लिए हानिकारक सिद्ध होता है और लाभ के स्थान पर उसके अनिष्ट की संभावना रहती है।

ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं कि किसी व्यक्ति ने किसी मंत्र की या देवता की साधना की, अथवा कोई योगाभ्यास या तांत्रिक अनुष्ठान किया। साधना की नियत रीति में कोई भूल हो गई अथवा किसी प्रकार वह अनुष्ठान खंडित होगया तो उसके कारण साधक को भारी विपत्ति में पड़ना पड़ता है। कई आदमी तो पागल तक होते देखे गये हैं। कई को रोग, मृत्यु, धननाश आदि का अनिष्ट सहना पड़ा है। ऐसे प्रमाण इतिहास प्रमाणों में भी मिलते हैं। वृत्त और इन्द्र की कथा इसी प्रकार की है वेदमंत्रों का अशुद्ध उच्चारण करने पर उन्हें घातक संकट सहना पड़ा था।

अन्य वेद मंत्रों की भांति गायत्री का भी शुद्ध सस्वर उच्चारण होना और विधि पूर्वक साधन होना उचित है। विधि पूर्वक किये हुए साधन सदा ही शीघ्र सिद्ध होते हैं और उत्तम परिणाम उपस्थित करते हैं। इतना होते हुए भी वेदमाता गायत्री में एक विशेषता है कि कोई भूल रहने पर उसका हानिकारक फल नहीं होता। जिस प्रकार दयालु, स्वस्थ और बुद्धिमान माता अपने बालकों के सदा हित चिंतना ही करती है उसी प्रकार गायत्री शक्ति द्वारा भी साधक का हित ही सम्पादन होता है। माता के प्रति बालक गलतियां भी करते रहते हैं, उसके सम्मान एवं पूज्य भाव में बालकों से त्रुटि भी रह जाती है और कई बार तो वे उलटा आचरण कर बैठते हैं इतने पर भी माता न तो उनके प्रति दुर्भाव मन में लाती है और न उन्हें किसी प्रकार की हानि पहुंचाती है। जब साधारण माताऐं इतनी दयालुता, क्षमा और उदारता प्रदर्शित करती हैं तो आदि जननी, वेद माता, सतोगुण की दिव्य सुरसरी, गायत्री

से तो और भी अधिक आशा रखी जासकती है। वह अपने बालकों की अपने प्रति श्रद्धा भावना को देखकर प्रभावित होजाती है, बालक की भक्ति भावना को देखकर माता का हृदय उमड़ पड़ता है। उसके वात्सल्य की अमृत निर्झरिणी फूट पड़ती है। उस दिव्य प्रवाह में साधना की छोटी मोटी भूलें, कर्मकाण्ड में अज्ञान वश हुई त्रुटियां तिनके के समान बह जाती हैं।

सतोगुणी साधना का विपरीत फल न होने का विश्वास भगवान कृष्णने गीता में दिलाया है—

नेहाभिक्रम नाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतोभयात्॥

अर्थात्—सत् कार्य के आरंभ का नाश नहीं होता—वह गिरता पड़ता आगे ही बढ़ता चलता है। उससे उलटा फल कभी नहीं निकलता। ऐसा कभी नहीं होता कि सत् इच्छा से किया हुआ कार्य असत् होजाय और उसका अशुभ परिणाम निकले। थोड़ा सा भी धर्मकार्य, बड़े भयों से रक्षा करता है।

गायत्री साधन ऐसा ही सात्विक, सत्कर्म है। जिसे एक बार आरंभ कर दिया जाय तो मन की प्रवृत्तियां उस ओर अवश्य ही आकर्षित होती हैं, और बीच में किसी प्रकार छूट जाय तो फिर भी समय समय पर बार बार उस साधन को पुनः आरंभ करने की इच्छा उठती रहती है। किसी स्वादिष्ट पदार्थ का एक बार स्वाद मिल जाता है तो बार बार उसे प्राप्त करने की इच्छा हुआ करती है। गायत्री ऐसा ही अमृतोपम स्वादिष्ट अध्यात्मिक आहार है जिसे प्राप्त करने के लिए आत्मा बार बार मचलती है, बारबार चीख पुकार करती है। उसकी साधना में कोई भूल रह जाय तो भी उलटा परिणाम नहीं निकलता किसी विपत्ति, संकट या अनिष्ट का सामना नहीं करना पड़ता। भूलों का, त्रुटियों का परिणाम यह होसकता है कि आशा से कम फल मिले या अधिक से अधिक यह कि वह निष्फल चला जाय। इस साधना को किसी भी थोड़े से भी रूप में आरंभ कर देने से उसका फल हर दृष्टि से उत्तम होता है। उस फलके कारण ऐसे भयों से मुक्ति मिल जाती है जो अन्य उपायों से बड़ी कठिनाई से हटाये या मिटाये जासकते हैं।

इन सब बातों पर विचार करते हुए साधकों को निर्भय मन से, झिझक, आशंका एवं भय को छोड़कर गायत्री की उपासना करनी चाहिए। यह साधारण मंत्र नहीं है जिसके लिए नियत भूमिका बांधे बिना काम न चले। मनुष्य यदि किन्हीं छुट्टल बनचारी, प्राणियों को पकड़ना चाहे तो इसके के लिए, चतुरता पूर्ण उपायों की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु बछड़ा अपनी मां को पकड़ना चाहे तो उसे मातृ भावनासे 'मां' पुकार देना मात्र काफी होता है, गौ माता खड़ी हो जाती है, वात्सल्य के साथ बछड़े को चाटने लगती है और उसे अपने पयोधरों से दुग्ध पान कराने लगती है। आइए, हम भी वेदमाता को सच्चे अन्तःकरण से भक्तिभावना के साथ पुकारें और उसके अन्तराल से निकला हुआ अमृत रस पान करें।

हमें शास्त्रीय साधना पद्धति से उसकी साधना करने का शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए। अकारण भूल करने से क्या प्रयोजन ? अपनी माता अनुचित व्यवहार को भी क्षमा कर देती है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसके प्रति श्रद्धा, भक्ति में कुछ ढील या उपेक्षा की जाय। जहां तक बन पड़े पूरी पूरी सावधानी के साथ साधना करनी चाहिए पर साथ ही इस आशंका को मन से निकाल देना चाहिए कि किंचित् 'मात्र भूल होगई तो बुरा होगा।' इस भय के कारण गायत्री साधना से वंचित रहने की आवश्यकता नहीं है, यह बात उपरोक्त श्लोक में स्पष्ट कर दी गई है कि वेद माता अपने भक्तों की भक्ति भावना का प्रधान रूप से ध्यान रखती है। और अज्ञान वश हुई छोटी मोटी भूलों को क्षमा करती रहती है।

साधना की पांच शर्त।

अतः स्वस्थेन चित्तेन श्रद्धया निष्ठया तथा।
कर्तव्याविरतं काले नित्यं गायत्र्युपासना॥

(अतः) इसलिए (श्रद्धया) श्रद्धा से (निष्ठया) दृढ़ता से तथा (स्वस्थेन चित्तेन) स्वस्थ चित्त से (नित्यं) प्रतिदिन (अविरतं) निरन्तर (काले) समय पर (गायत्र्युपासना) गायत्री की उपासना करनी चाहिए।

किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए कुछ शर्तें होती हैं जिन्हें पूरा करके ही कोई आदमी निश्चित लक्ष तक पहुंच सकता है। यदि शर्तबन्दी न होती तो हर कोई, हर काम में सफल होजाता। पर ऐसा इसलिए नहीं होता—क्योंकि परमात्मा हर वस्तु अधिकारी पात्रों को देता है। जो अपनी पात्रता सिद्ध कर देता है, वह प्रमाण दे देता है कि मैं इसका अधिकारी हूं उसे ही वह सफलता प्राप्त होती है। परीक्षक को अपने ज्ञान का प्रमाण दे देने पर ही विद्यार्थी को प्रमाण पत्र प्राप्त होता है।

गायत्री माता की प्रसन्नता प्राप्त करने और उसकी कृपा का सिद्धि रूपी प्रमाण पत्र प्राप्त कर लेने के लिए कुछ शर्तें रखी गई हैं, उन शर्तों को पालन करके ही इस साधना में सफलता मिल सकती है। वे शर्तें यह हैं कि (१) स्थिर चित्त (२) श्रद्धा (३) दृढ़ता (४) निरन्तर (५) समय पर साधना करना। अब इनका विवेचन नीचे किया जाता है—

स्थिर चित्त को चारों ओर से समेट कर एकाग्रता पूर्वक साधना में लगाना चाहिए। बिखरी हुई बारूद को जला देने से वह भक् से जल जाती है और उसकी शक्ति समाप्त होजाती है किन्तु यदि उसे बन्दूक की एक छोटी नाली में डालकर एक ही दिशा में जलाया जाय तो भयंकर आवाज करती है और जिधर चलाई जाती है उधर प्राणघातक परिणाम उपस्थित करती है। थोड़ी सी जगह में बिखरी हुई सूर्य किरणें कोई विशेष कार्य नहीं करतीं पर जब उन्हें आतिशी कांच द्वारा एक स्थान पर केन्द्रित कर दिया जाता है तो वे अग्नि उत्पन्न कर देती हैं। इसी प्रकार एकाग्र चित्त से की हुई साधना आशाजनक फल उपस्थित करती हैं, पर यदि अस्थिर मन से किया जाय तो प्रयत्न उतना ही अल्पफल दाता सिद्ध होता है। अतएव स्थिर चित्त होना साधना की पहली शर्त है।

श्रद्धा—किसी वस्तु की महत्ता एवं श्रेष्ठता में विश्वास होना, उसके प्रति मन में भक्ति,प्रीति, प्रतीति एवं समीपता की आकांक्षा होने को श्रद्धा कहते हैं। गायत्री वस्तुतः परमात्मा की ब्राह्मी शक्ति है, उसकी आराधना से निश्चित रूप से दैवी तत्वों का अभिवर्धन होता है, इस अभिवर्धन से प्राणी के आत्मिक और भौतिक आनन्दों का मार्ग अवश्य ही प्रशस्त होता है,"इस ब्राह्मी शक्ति को मैं निस्संदेह प्राप्त कर सकता हूँ और निश्चय ही वह महत्व पूर्ण लाभ मुझे भी मिल कर रहेंगे जो इस साधना के फल स्वरूप असंख्यों साधकों को अब तक मिल चुके हैं। इस प्रकार की भावनाओं का मन में उठते रहना, उनके कल्पना चित्र मस्तिष्क में घूमते रहना तथा उन विचार धाराओं के प्रति अधिकाधिक विश्वास भाव दृढ़ होते जाना, गायत्री साधना की श्रद्धा है।

मनोविज्ञान शास्त्र के जानकर भली प्रकार जानते हैं कि मानव अन्तःकरण में एक उत्पादक प्रचंड सजीव विद्युत शक्ति का भण्डार है, जिसके द्वारा सूक्ष्म जगत में ऐसी ऐसी अद्भुत रचनाएं होती हैं, जो स्थूल जीवन में आश्चर्य जनक फल उपस्थित करती हैं। तंत्र, मंत्र,देवता, शाप, वरदान, ऋद्धियाँ सिद्धियां आदि चमत्कारी आत्मिक शक्तियां इसी विद्युत शक्ति के द्वारा प्राप्त होती हैं। और इनका निर्माण श्रद्धा तथा विश्वास के आधार

पर होता है। तुलसीदासजी ने श्रद्धा और विश्वास को भवानी तथा शंकर माना है। "भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।" श्रद्धा एक सांचा है जिसमें आन्तरिक शक्तियां ढलकर उसी रूप में प्रकट होती हैं, जिससे अभीष्ट दिशा में तेज़ी से प्रगति और मनोवाञ्छित सफलता प्राप्त होती है। इस दृष्टि से श्रद्धा को साधना की दूसरी आवश्यक शर्त माना है।

दृढ़ता—विलम्ब कठिनाइयां तथा निराशा जनक स्थित होते हुए भी एक स्थान पर मजबूती तथा अविचल भाव से खड़े रहने को दृढ़ता कहते हैं। दृढ़ता से बुद्धि निश्चयात्मक होजाती है, एक ओर लक्ष होजाने से समस्त शक्तियां उसी दिशा में लगती हैं और सन्तोष जनक परिणाम उपस्थित करती हैं। अपने कार्य में दृढ़ता हो। उत्साह का आवेग थोड़े ही दिनों में ठंडा होजाता है और उसे छोड़ देने, शिथिल कर देने की इच्छा होने लगती है। इस अनुत्साह से मन उचटने लगता है, उठाया हुआ काम नीरस प्रतीत होता है, ऊबा हुआ मन तरह तरह के बहाने, संदेह और अविश्वास उत्पन्न करने लगता है, यह क्रम थोड़े दिन चलने के बाद अन्त में उसे अधूरा ही छोड़ दिया जाता है।

किसी आवेश में, उत्तेजना में, प्रलोभन में, आकर्षण में, आकर काम नहीं करना चाहिए। उसे हर पहलू से जांच कर पूरा पूरा सन्तोष कर लेना चाहिए और जब सन्तोष होजाय तो उस पर मजबूती के साथ आरूढ़ होजाना चाहिए, फिर चित्त को तब तक विचलित न करना चाहिए जब तक कि कोई अनिवार्य कारण सामने न आजाय या उस कार्य की अनुपयोगिता प्रमाणित न होजाय। पत्ते पत्ते पर मन डुलाने से, छोटे २ विघ्नों या असुविधाओं के कारण हिम्मतहार जाने से कोई बड़े कार्य पूरे नहीं होसकते। गायत्री की सिद्धि एक महान कार्य है और उसे सफलता पूर्वक पूर्ण करना उन्हीं के लिए संभव है जो दृढ़ स्वभाव के हैं। इसीलिए इस साधना के लिए तीसरी शर्त दृढ़ता रखी गई है।

निरन्तर—लगातार किसी कार्य को करते रहने से वह आदत में शामिल होजाता है और प्रिय लगने लगता है, उसमें रस आता है, और उसी प्रकार के अपने संस्कार एवं स्वभाव बनने लगते हैं। मनुष्य-आदतों का पुतला है। अन्तर्मन का उस पर प्रभुत्व रहता है। कोई बात चित्त में गहरे संस्कार के रूप में तभी जमती है जब उसे दीर्घ कालतक निरन्तर सेवन किया जाय। मुलायम रस्सी की रगड़ से कठोर पत्थर पर निशान बन जाते हैं। असंस्कृत मन पर भी निरन्तर रगड़ की जाय तो वह सुसंस्कृत बन सकता है।

थोड़े दिन तक मन में घूमने वाली बात विचार कही जाती है। विचार की शक्ति सीमित होती है, पर दीर्घकाल तक सेवन किये हुए, धारण किये हुए, विचार संस्कार के रूप में परिपक्व होजाते हैं और फिर उनके द्वारा प्रेरणा का ऐसा मानसिक क्रम बँध जाता है कि इच्छाएँ उसी केन्द्र के आस पास भ्रमण करने लगती हैं। फिर उसी दिशा में जीवन की गति विधि चल पड़ती है। गायत्री की सतोगुणी धारा अन्तस्तल के गहन तम भाग तक पहुंचाने के लिए यह आवश्यक शर्त है कि उस साधन को निरन्तर दीर्घकाल तक अपनाया जाय। चंद रोज उसे करके छोड़ देने से स्थायी लाभ नहीं हो सकता उसे तो जीवन का अभिन्न सहचर बना लेने में ही आत्मा का कल्याण है।

समय पर—दिन के प्रत्येक भाग में प्रकृति के कुछ सूक्ष्म तत्वों की विशेषता रहती है। वृक्ष दिन में आक्सिजन उगलते हैं पर वेही रात को आक्सिजन खाकर कोर्वोनिक ऐसिड गैस उगलते हैं, जिससे रात और दिन के वायु में काफी अन्तर पड़ जाता है। प्रातःकाल की वायु में जो जीवनी शक्ति प्रफुल्लता और ताजगी होती है वह मध्यान्ह को नहीं रहती। जैसे स्थूल तत्वों में समय भेद से अन्तर पड़ता रहता है वैसे ही

सूक्ष्म तत्वों में भी अन्तर पड़ता है । प्रातःकाल सतोगुण की अधिकता रहती है दो पहर बाद रजोगुण और रात्रि में तमोगुण का प्राबल्य रहता है। साधना पर भी समय का प्रभाव होता है क्योंकि मन पर वातावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

एक विशेष प्रकार की भूमि में, एक विशेष ऋतु में, एक विशेष प्रकार की रीति से, एक बीज बोया जाता है तो उसकी फसल सन्तोष जनक होती है, पर यदि उपरोक्त विधि व्यवस्था का ध्यान रखे बिना यों ही अव्यवस्थित रीति से बीज बोया जाय तो उसका आशा जनक परिणाम प्राप्त न होगा। दुधारू पशु समय पर दुहे जाते हैं तो उनका दुग्ध क्रम ठीक रहता है पर यदि इस क्रम को बिगाड़ दिया जाय कभी दिन में कभी रात में, कभी सबेरे, कभी दोपहर को उन्हें दुहा जाय तो इसका परिणाम बुरा होगा । साधना जिस समय पर की जाती है, उस समय के वातावरण के अनुसार मनोभूमि में एक विशेष प्रकार के अंकुरों का निर्माण होता है जो अपने विशेष क्रम से परिपुष्ट होने के लिए बढ़ते हैं, परन्तु यदि समय की अव्यवस्था रहे तो एक प्रकार के जमे हुए अंकुर मुर्झाते हैं, दूसरे प्रकार के नये जमते हैं फिर वे भी परिवर्तनों के अनुसार सूखते हरे होते रहते हैं। इस गड़बड़ी से यह फसल वैसे अच्छे फल नहीं लापाती जैसे कि लाने की आशा करनी चाहिए । इसलिए साधना की पांचवीं शर्त यह है कि समय पर नियत मर्यादा में, नियमित रूप से साधना की जाय।

यह पांच शर्तें न केवल गायत्री साधना के लिए वरन् जीवन के प्रत्येक कार्य के लिए लागू होती हैं। इन उपरोक्त पांच शर्तों के साथ जो भी कार्य किया जावेगा वह उचित रीति से उन्नति की ओर बढ़ेगा और सन्तोष जनक परिणाम उपस्थित करेगा।

दीक्षा और गुरु मंत्र।

दीक्षामादाय गायत्र्या ब्रह्मनिष्ठाग्रजन्मना ।
आरभ्यतां ततः सम्यग्विधिनोपासना सता ॥

(ब्रह्मनिष्ठाग्रजन्मना) ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण से (गायत्र्याः) गायत्री की (दीक्षां आदाय) दीक्षा लेकर (ततः) तब (सता) सत्स्वभाव वाले व्यक्ति को (सम्यग् विधिना) ठीक विधि से (उपासना आरभ्यतां) उपासना आरंभ करनी चाहिए।

अयमेव गुरोर्मन्त्रः यः सर्वोपरिराजते ।
बिन्दौ सिन्धुरिवास्मिंस्तु ज्ञान विज्ञानमाश्रितम् ॥

(अयमेव) यह ही (गुरोर्मन्त्रः) गुरुमंत्र है । (यः) जो (सर्वोपरि , सर्वोपरि (राजते) विराजमान है (बिन्दौसिन्धुरिवः) एक बिन्दु में सागर के समान (अस्मिन्) इस इस मंत्र में (ज्ञान विज्ञानं) समस्त ज्ञान और विज्ञान (आश्रितं) आश्रित हैं।

अध्यात्मिक जगत में गुरु का बहुत ही महत्व पूर्ण स्थान है । जन्म देने वाली माता और पालन करने वाले पिता के पश्चात् सुसंस्कृत बनाने वाले गुरु का ही स्थान है। भारतीय समाज में "निगुरा" एक गाली समझी जाती है। जिसका गुरु नहीं उसे असंस्कृत, अविकसित माना जाता है। कारण यह है कि गुरु के बिना मनोभूमि का ठीक प्रकार निर्माण नहीं होपाता । माता, पिता कितने ही सुशिक्षित क्यों न हों पर वे अपने बालकों का उचित निर्माण करने में समर्थ नहीं होते । उन्हें अपने बालकों के प्रति स्वाभाविक, मोह, पक्षपात, स्नेह होता है, इस अति के कारण बालक के प्रति उनकी निष्पक्ष दृष्टि नहीं रहती, वे उसे ठीक प्रकार समझ नहीं पाते, या समझने की स्थिति में नहीं होते। बच्चा तुतला कर बोल रहा हो तो माता पिता को बड़ा अच्छा लगता

है, वे स्वयं भी उसके साथ वैसी ही तोतली बोली में बात करने लगते हैं और चाहते हैं कि बालक बारबार उसी प्रकार की तोतली बोली बोले, अपने बालक को इस प्रकार बोलते देखकर उन्हें बड़ा आनन्द आता है।

ऐसे अवसरों पर गुरु का दृष्टिकोण दूसरा होता है। वह देखता है कि इस प्रकार बोलने से बालक को आदत पड़ सकती है और वह आगे के लिए तुतलेपन की बीमारी से ग्रस्त हो सकता है। अतएव गुरु उस प्रकार के मोह ग्रस्त लाड़-चाव से दूर रह कर बालक को तोतली बोली बोलना रोककर उसे शुद्ध आचरण की शिक्षा देता है। लाड़चाव के कारण, दुलार-स्नेह और असाधारण प्रेम के कारण माता पिता न तो बालकों पर नियंत्रण कर सकते हैं और न उनकी आन्तरिक स्थिति की वास्तविकता को समझ पाते हैं ऐसी दशा में उनके हाथ से बच्चों का अच्छा निर्माण नहीं होपाता, इस कार्य को तो निष्पक्ष, निस्वार्थ, मोह ममता से रहित, दूरदर्शी, सच्चा स्थायी हित चाहने वाले, ज्ञानवृद्ध गुरु ही कर सकते हैं। यही कारण है कि भारतीय अपने बालकों को थोड़ा सा समर्थ होते ही गुरुकुलों में भेज देते थे और वहाँ उनका निर्माण होता था।

ज्ञान के दो अंग हैं एक-सिद्धान्त (थोरी) दूसरा अनुभव (प्रेक्टिस)। केवल सिद्धान्त समझने मात्र से कोई ज्ञान पूर्ण नहीं होसकता। चिकित्सा, शिल्प, रसायन, संगीत, चित्रकारी, शस्त्रविद्या, यंत्रसंचालन, विज्ञान आदि की शिक्षा यदि केवल पुस्तक रूप से प्राप्त हो तो निश्चित रूप से अधूरी रहेगी। जिसने कपड़ा बुनने का कला को केवल सिद्धान्त रूप से तो समझा है पर करघा, सूत बुनाई आदि का क्रियात्मक रूप से व्यवहार नहीं किया है वह कपड़ा नहीं बुन सकता। इसी प्रकार जीवन की अगणित समस्याएं जिनका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, केवल स्कूल कालिजों की तोता रटंत से न तो समझी जा सकती हैं और न उनका हल मालूम होता है। इसलिए किसी भी विषय की शिक्षा प्राप्त करनी होती है तो उस विषय के अनुभवी द्वारा उस विषय का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त किया जाता है, तभी सर्वाङ्गपूर्ण शिक्षा मिल पाती है।

आध्यात्म साधना के लिए तो अनुभव पूर्ण शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। क्योंकि प्रत्येक साधक की मनोभूमि, स्वास्थ्य, एवं परिस्थिति में भिन्नता होती है। इस भिन्नता के कारण उनकी साधनाओं में अन्तर करने की आवश्यकता पड़ती है। किसी के लिए कोई विधि व्यवस्था, उपयोगी बैठती है तो किसी के लिए उसमें हेर फेर करना जरूरी होता है। इन बातों को साधक स्वयं नहीं जान सकता। स्कूल में जाने वाले बच्चे स्वयं यह निर्णय करने में समर्थ नहीं होते कि हमें कौन पुस्तकें, किस क्रम से पढ़नी चाहिए यदि वे अपने आप, अपनी इच्छा से, मन मर्जी का पाठ्यक्रम चुनें और स्वयं अपनी शिक्षाविधि निर्धारित करें तो उनके लिए सफलता प्राप्त करना कठिन होगा, वे समय और शक्ति का दुरुपयोग करेंगे और उस लाभ से वंचित रहेंगे जो गुरु की मर्जी के अनुसार पढ़ने से उन्हें प्राप्त होसकता था।

साधना काल में कई बार कुछ विक्षेप उत्पन्न होजाते हैं, उन विक्षेपों के, भूलों के, सुधार के लिए उपाय जानने की आवश्यकता होती है, कई बार विचित्र अनुभव आते हैं उनका कारण समझने की जरूरत पडती है, बीच बीच में परीक्षा करने की आवश्यकता अनुभव होती है जिससे यह मालूम पडता रहे कि साधना की प्रगति किस दिशा में, किस गति से हो रही है। यों कोई भी रोगी किसी चिकित्सा पुस्तक को लेकर अपनी दवा दारू कर सकता है, पर इस उपाय से अभीष्ट लाभ प्राप्त होगा ही यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए किसी चतुर वैद्य के हाथ में चिकित्सा का उत्तरदायित्व सोंपना होता है। वैद्य देखता है कि रोगी को क्या रोग

है, उसके लिए क्या चिकित्सा अच्छी पड़ेगी, इस निर्णय के लिए वह अपने चिर अनुभव को काम में लाता है और औषधि व्यवस्था करता है, फिर देखता है कि औषधि का क्या असर होरहा है, उनके अनुसार हेर फेर करता है। मूत्र परीक्षा, जिह्वा परीक्षा, नाड़ी परीक्षा, वजन, थर्मामीटर, स्टेस्थेस्कोप आदि द्वारा यह जांचता रहता है कि कितनी प्रगति होरही है, उस प्रगति को संतुलित रखने के लिए वह रोगी को आवश्यक सलाह, पथ्य, परिचर्या आदि का आदेश करता रहता है। आध्यात्मिक साधना में साधक के लिए गुरु वही कार्य करता है जो रोगी के लिए वैद्य करता है।

आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ने के लिए सब से प्रथम श्रद्धा और विश्वास को दृढ़ करने की आवश्यकता होती है। जैसे यात्रा के लिए दो पैरों का ठीक होना आवश्यक है, तैरने के लिए हाथों की जरूरत है वैसे ही योग मार्ग के लिए श्रद्धा और विश्वास दो मूलभूत तत्व हैं। इनके बिना इस मार्ग पर एक इंच भी प्रगति नहीं हो सकती। इन दोनों तत्वों को सबल बनाने के लिए उनका अभ्यास किसी ऐसे आधार पर करना होता है जो श्रेष्ठ हो, लाभ दायक हो, प्राज्ञ हो, तथा प्रत्युत्तर देता हो। ऐसा आधार गुरु ही होसकता है। सूक्ष्म, निराकार, अप्रत्यक्ष, ईश्वर या उसकी शक्तियों पर दृढ़ आस्था आरोपित करने से पूर्व श्रद्धा विश्वास को स्थूल आधार पर आरोपित करके उन्हें पुष्ट बनाया जाता है। गुरु के ऊपर आरोपित की हुई श्रद्धा—थोड़े ही समय में परिपक्व होकर ईश्वरीय निष्ठा के रूप में परिवर्तित होजाती है। जैसे छोटी तीर कमान पर अभ्यास करते करते योद्धा लोग प्रचंड धनुष बाणों का प्रयोग करने में समर्थ होजाते हैं वैसे ही गुरुभक्ति का अभ्यास, स्वल्प काल में ईश्वर भक्ति के रूप में परिणत होजाता है।

गुरु स्थापना के प्रत्यक्ष लाभ तो स्पष्ट हैं ही। यह एक प्रकार का अध्यात्मिक विवाह है। जिसमें दो व्यक्ति एक पवित्र उत्तरदायित्व को ओढ़ते हैं। गुरु अपने ऊपर उत्तर दायित्व लेता है कि शिष्य की आत्मा को ऊंचा उठाने में कोई कसर न रखूंगा। शिष्य अपने ऊपर उत्तर दायित्व लेता है कि गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा रखता हुआ उनके आदेश को शिरोधार्य करूंगा। विवाह और दीक्षा में यद्यपि भौतिक दृष्टि से बहुत अन्तर है पर आध्यात्मिक दृष्टि से उसमें विशेष अन्तर नहीं है। दो आत्माएं जीवन भर के लिए पूरी ईमानदारी से एक दूसरे की उन्नति और सहायता का व्रत लेती हैं यही दीक्षा कहलाती है। पति पत्नीकी इस प्रतिज्ञा को विवाह,और गुरुशिष्य की प्रतिज्ञा को दीक्षा,मित्र २ की प्रतिज्ञा को मैत्री या "पगड़ी पलटना" कहते हैं। इस प्रकार के व्रत बन्ध के पश्चात् अधिक ज़िम्मेदारी से कर्तव्य पालन के भाव दृढ़ होते हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि शिष्य के पाप पुण्यों का दसवां भाग गुरु को भी मिलता है। कारण स्पष्ट है कि शिष्य के निर्माण में गुरु का भारी उत्तर दायित्व उन कार्यों में उसे भागीदार बनादेता है।

गायत्री साधना के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिए ब्रह्मनिष्ठ आत्म दर्शी, का वरण करना चाहिए। कोई श्रेष्ठ, अनुभवी, आत्मिक दृष्टि वाले सदाचारी व्यक्ति अपने समीप न हों तो दूरस्थ व्यक्तियों से भी यह होसकता है। शरीर दूर दूर रहते हुए भी आत्माओं के लिए दूरी का कोई प्रश्न नहीं। दूरस्थ आत्माएं उसी प्रकार एक दूसरे की समीपता कर सकती हैं जिस प्रकार पास पास रहते हुए दो व्यक्ति आपस से निकटता अनुभव करते हैं। यदि ऐसी, दूरस्थ गुरु की भी व्यवस्था न हो सके, तो किसी स्वर्गीय महापुरुष की, आत्मा को गुरु वरण किया जासकता है। एकलव्य, कबीर आदि ने दूरस्थ व्यक्तियों को गुरुवरण करके अपने आप दीक्षा लेली थी। इस प्रकार के दूरस्थ या स्वर्गस्थ गुरुओं के बारे में शिष्य को ऐसा भाव मन में धारण करना पड़ता है कि वे अपने समीप हैं,

प्रसन्न हैं और गुरु के समस्त उत्तर दायित्वों को पूरा कर रहे हैं।

दीक्षा के समय गुरु शिष्य को एक प्रधान विचार देते हैं। यह विचार—मंत्र—कहलाता है। मंत्रों में सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपरि मंत्र गायत्री है, क्योंकि इसमें ज्ञान-सांसारिक ज्ञान, विज्ञान-आध्यात्मिकज्ञान इस प्रकार भरा हुआ है जैसे विन्दु में सिन्धु। जल की एक बूंद में वे सब तत्व मौजूद होते हैं जो समुद्र की विशाल जल राशि में होते हैं। बीज में वृक्ष का संपूर्ण आधार छिपा होता है, वीर्य की एक बूंद में सारे शरीर का ढांचा सन्निहित रहता है। गायत्री मंत्र २४ अक्षर का है पर इसके गर्भ में ज्ञान विज्ञान के अनन्त भाण्डागार छिपे पड़े हैं। इससे बड़ा कोई मंत्र नहीं, इसलिए इस वेदमाता को गुरु मंत्र के रूप में अन्तस्तल में धारण करना अधिक मंगल मय होता है। दीक्षा और गुरुमंत्र ग्रहण करने की विधि के साथ आरंभ की हुई गायत्री उपासना विशेष फलवती होती हैं, ऐसा शास्त्र का मत है।

द्विजों का नित्य नियम।

गायत्र्युपासना मुक्त्वा नित्यावश्यक कर्मसु।
उक्तस्तत्र द्विजातीनां नानध्यायो विचक्षणैः॥

(गायत्र्युपासनां) गायत्री की उपासना को (नित्यावश्यककर्मसु) नित्य आवश्यक कर्मों में (उक्त्वा) बतलाकर (विचक्षणैः) विद्वानों ने (द्विजातीना) द्विजों के लिए (तत्र) उसमें (अनध्यायः) अनध्याय (न उक्तः) नहीं कहा।

आराधयन्ति गायत्रीं न नित्यं ये द्विजन्मनः।
जायन्ते हि स्वकर्मभ्यस्ते च्युता नात्र संशयः॥

(ये द्विजन्मनः) जो द्विज (गायत्रीं) गायत्री की (नित्यं) नित्य प्रति (न आराधयन्ति) आराधना नहीं करते (ते) वे (स्वकर्मभ्यः) अपने कर्मों से (च्युता जायन्ते) भ्रष्ट होजाते हैं (अत्र) इसमें (न संशयः) कोई संदेह नहीं है।

नित्य कर्म कौन से है? इसका निर्णय दो आधारों पर किया जाता है (१) आवश्यक शक्ति की प्राप्ति (२) मलों का निवारण। भोजन व्यायाम, धन उपार्जन, निद्रा, मनोरंजन शिक्षा, सहयोग आदि कार्य आवश्यक शक्ति प्राप्त के लिए किये जाते हैं। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक शक्तियों के व्यय से हमारा दैनिक कार्यक्रम चलता है यह शक्तियां अपने में जितनी ही न्यून होती हैं उतना ही जीवन क्रम का संचालन कठिन एवं कष्टसाध्य हो जाता है। जिन वस्तुओं का नित्य खर्च होता है उनको नित्य कमाना भी आवश्यक है। चूंकि शक्तियों का खर्च किये बिना, जीवन नहीं चल सकता, इसलिए उनका उपार्जन करना आवश्यक ठहराया गया है। हम में से सभी का दैनिक कार्यक्रम-अधिक अंश में शक्ति उपार्जन के लिए निहित होता है। इसलिए हमारे नित्य कर्मों में उपरोक्त प्रकार के उपार्जन संबंधी कार्य सम्मिलित होते हैं। दूसरे प्रकार के नित्य कार्य वे होते हैं जिनमें मलों का निवारण होता है। मल मूत्र का त्याग, कुल्ला दांतोन, स्नान, वस्त्र धोना, हजामत, मकान वर्तन तथा आवश्यक वस्तुओं की सफाई के लिए नित्य कुछ न कुछ समय देना पड़ता है। क्योंकि मलों की उत्पत्ति नित्य होती है। हर चीज हर घड़ी मैली होती है, उस पर अनावश्यक द्रव्यों के परत जमते हैं, इन्हें न छुड़ाया जाय, न हटाया जाय तो थोड़े ही समय में जीवन की समस्त दिशाएं मैली, गंदी, कुरूप एवं विषाक्त होजांय और उन मलों से उत्पन्न भयंकर परिणामों का सामना करना पड़े। नाक, कान, आंख, मुख, शिश्न आदि छिद्रों में से

हर घड़ी थोड़ा थोड़ा गंदा श्लेष्म स्रवित होता रहता है, उसे बारबार साफ न किया जाय तो गंदगी की एक घृणास्पद एवं हानिकारक मात्रा जमा हो जाती है। मलमूत्र को भीतर भरे रहें सांसको त्यागने में आलस्य किया जाय तब तो स्वास्थ्य का नाश ही समझिए। इन दुर्घटनाओं से बचने के लिए मलें की सफाई नित्यकर्म में सम्मिलित की गई है।

जिस प्रकार शरीर में तथा सांसारिक पदार्थों में मैल जमता है तथा शक्ति का व्यय होता है, वैसे ही आत्मिक जगत में भी होता है। दैनिक संघर्षों के आघातों से, कटु अनुभवों से, वातावरण के प्रभावों से, लगातार सोचने से, आत्मिक शक्तियों का व्यय होता है और आत्मा को थकान आजाती है। इस क्षति पूर्ति के लिए नित्य शक्ति संचय की आवश्यकता होती है। जैसे शरीर को भोजन, व्यायाम, निद्रा आदि की जरूरत पड़ती है वैसे ही आत्मा को नई शक्ति प्राप्त करने के लिए कुछ न कुछ करना अवश्यक होता है। इसी "कुछ न कुछ" को साधना, पूजा, भजन, स्वाध्याय, आत्म चिन्तन, आदि नामों से पुकारते हैं। इन उपायों से आत्मबल प्राप्त होता है, आत्मिक थकान मिटती है, प्रकाश, स्फूर्ति और ताजगी मिलती है। जैसे पूरी निद्रा लेकर, पौष्टिक आहार प्राप्त करके प्रसन्न चित्त हुआ मनुष्य जिस कार्य में जुटता है उसे उत्साह चतुरता और शीघ्रता से पूरा कर लेता है उसी प्रकार साधना के द्वारा आत्मबल प्राप्त करने पर मनुष्य की आन्तरिक स्थिति काफी मजबूत और प्रफुल्लित होजाती है, उसके द्वारा दैनिक जीवन की गतिविधि का संचालन बड़ी ही आशापूर्ण उत्तमता के साथ होता है।

जैसे शरीर वस्त्र एवं वस्तुओं पर प्रतिक्षण मल जमता है वैसे ही संसार व्यापी तमोगुणी तत्वों, आसुरी प्रवृत्तियों की छाया निश्चितरूप से मनपर पड़ती है। उसकी नित्य सफाई करना आवश्यक होता है। अतः आत्म निरीक्षण करके, अपनी नित्य समालोचना करना, दोषों को ढूंढना और उनका निवारण करना, आत्मिक मल शोधन ही है। साधना से जहां शक्ति प्राप्त होती है वहां मानसिक मलों का शोधन भी होता है। इसलिए शास्त्रकारों ने आध्यात्मिक साधना को नित्य कर्म कहा है। उसमें आलस्य, अनध्याय, विराम, छुट्टी की गुंजायश नहीं रखी गई है। हम कुल्ला दातौन, मलमूत्र त्याग, तथा जल वायु सेवन की कभी छुट्टी नहीं करते उसी प्रकार आत्मिक साधनाओं की भी कभी छुट्टी नहीं होती। रोगी, अशुद्ध, असमर्थ तथा विपन्न परिस्थितियों में पड़े होने का अवसर आवे तो अविधि पूजा की जासकती है उस समय नियमित कर्मकाण्ड की छूट मिल सकती है। किसी भी विधि से सही पर उसका करना आवश्यक है क्यों कि वह नित्य कर्म है। नित्य कर्म में अनध्याय नहीं होता। ऐसे अनध्याय का परिणाम हानिकारक होता है। अनेकों मनुष्य आत्मिक साधन करने में प्रायः आलस्य और उपेक्षा बरतते हैं, फल स्वरूप उनका आन्तरिक जीवन, नाना प्रकार के विषय विकारों से भरा रहता है, आत्म शान्ति के दर्शन उनके लिए दुर्लभ होजाते हैं, वे जीवन के महान लक्ष्य से वंचित रहकर, भोगैश्वर्य की तुच्छ कीचड़ में बुजबुजाते हुए अमूल्य मानव जन्म को निरर्थक बना देते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि—"जिस दिन स्वाध्याय नहीं किया जाता उस दिन व्यक्ति अपने स्वाभाविक पदसे च्युत होजाता है।" कारण स्पष्ट है जिस दिन मनुष्य शौच न जायगा, मूत्र त्याग न करेगा, मुंह हाथ न धोवेगा, उस दिन उसकी वह दशा न रहेगी जो स्वभावतः साधारण मनुष्य की रहती है। जिस दिन भोजन न किया जाय, जल न पिया जाय, सोया न जाय उस दिन क्या कोई मनुष्य अपनी स्वाभाविक दशा में रह सकता है? वह अपनी स्वाभाविकता से च्युत अवश्य होगा। इसी प्रकार आत्मिक भोजन प्राप्त किये बिना, आत्मशोधन किये बिना,

भी अन्तःकरण स्वस्थ नहीं रह सकता उसकी स्थिति, स्थान भ्रष्ट जैसी ही होजावगी। शतपथ कार का यही अभिप्राय है। इस अभिप्राय का दृढ़ फलितार्थ यह है कि हमारे लिए नित्य प्रति साधन करना उचित एवं आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। श्रुति कहती है—"स्वाध्यायान्मा प्रमदतव्यं।" स्वाध्याय में प्रमाद मत करो। इस महत्व पूर्ण कार्य में हममें से किसी को प्रमाद नहीं करना चाहिए।

द्विजातियों के लिए—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए, तो साधना अत्यन्त आवश्यक है। शूद्र उसे कहते हैं जो मनुष्य शरीर तो धारण किये हुए हैं, पर मनुष्य आत्मा जिसके अन्दर नहीं है। ऐसे मानव प्राणियों की कमी नहीं जो नैतिक और आत्मिक दृष्टि से पशुओं से भी गये बीते हैं। ऐसे लोग न तो आत्मा को ही पहचानते हैं और न आत्मा के उत्तर दायित्व को समझते हैं, उनके लिए न तो साधना का महत्व है और न आत्म प्राप्ति का। ऐसे लोगों की प्रवृत्ति ही इस मार्ग में नहीं होती, शास्त्रों के आदेश और सत्पुरुषों के उपदेशों की ओर उनका मन आकर्षित नहीं होता। ऐसी मनोभूमि के लोगों को शास्त्र कारों ने छोड़कर ठीक ही किया है, वे स्वयं ही इधर आंख उठाकर नहीं देखते, उनकी रुचि इधर मुड़ती ही नहीं, ऐसे लोगों पर क्या उत्तर दायित्व लादा जाय। राज के कानून बनते हैं वे बन्दरों पर लागू नहीं होते। ऐसा ही विचार करके शास्त्रकारों ने उस श्रेणी के लोगों का अलग रहना स्वीकार कर लिया है, पर उन चैतन्य लोगों पर, द्विजों पर, इस बात के लिए अत्यधिक जोर दिया है कि वे साधना में अनध्याय न करें, अन्यथा उनकी भी गणना शूद्रों में होगी, उन्हें भी उसी श्रेणी का समझा जायगा।

साधना कौन सी करनी चाहिए। इस प्रश्न के संबंध में क्या कहा जाय। अन्य साधनाओं के विषय में मत भेद होसकता है पर शिखा सूत्र धारी किसी भी हिन्दू को गायत्री की महानता में सन्देह नहीं होसकता। क्योंकि वह 'वेदमाता" है, उसकी महत्ता को सम्पूर्ण शास्त्रों, सम्प्रदायों और ऋषियों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। जिसने भी इस महा साधन का अनुभव किया है उसने उसकी सर्वोत्कृष्टता को माना है। हम भी गायत्री उपासना को अपना नित्य नियम-नित्य कर्म बनावें तो उन्हीं लाभों को प्राप्त कर सकते हैं जिन्हें असंख्यों ने अब तक प्राप्त किया है।

गायत्री और यज्ञोपवीत।

शूद्रास्तु जन्मना सर्वे पश्चाद्यान्ति द्विजन्मताम्।
गायत्र्यैव जनाः साकंह्युपवीतस्य धारणात्॥

(जन्मनातु) जन्म से (सर्वेशूद्राः) सभी शूद्र होते हैं (पश्चात्) बाद में (जनाः) मनुष्य (गायत्र्या साकं) गायत्री के सहित (उपवीतस्य धारणात्) यज्ञोपवीत धारण करने से (एव) ही (द्विजन्मतां) द्विजत्व को (यान्ति) प्राप्त होता है।

रहस्यमुपवीतस्य गुह्याद् गुह्यतरं हियत्।
अन्तर्हितं तु तत्सर्वं गायत्र्यां विश्व मातरि॥

(उपवीतस्य) यज्ञोपवीत का (यत्) जो (गुह्यादगुह्यतरं) गुह्य से गुह्य (रहस्यं) रहस्य है (तत्सर्वं) वह सब (विश्वमातरि) विश्व माता (गायत्र्यां) गायत्री में (अन्तर्हित) अन्तर्हित है।

आत्म दर्शियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से बताया है कि क्रमिक विकाश के सिद्धान्तानुसार जीव चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् मनुष्य शरीर प्राप्त करता है। इन पुराने जन्म जन्मान्तरों में नाना प्रकार के गुण कर्म स्वभावों में होकर उसे गुजरना पड़ता है, जिनकी थोड़ी

बहुत छायायें उसके गुप्त मन पर बनी रहती हैं। भेड़िये की क्रूरता व्याघ्र की निर्दयता बन्दर की उठाई गीरी, श्रृंगाल की धूर्तता, कुत्ते का जाति द्रोह, बगुले का ढोंग, कौए की कुरुचि, सर्प की असहिष्णुता, मच्छर की दुष्टता, मक्खी की गंदगी, लोमड़ी की चालाकी, उल्लू और चमगादड़ की निशाचरता, खरगोश की भीरुता, चींटी का का परिग्रह, सुअर की अभक्ष सेवन आदि निकृष्टतायें उसी जीवन के साथ साथ समाप्त नहीं होजातीं वरन् उनकी छाप प्राणी के अन्तः प्रदेश में पड़ी रहती हैं। इस प्रकार की लाखों योनियों में भ्रमण करता हुआ जीव मनुष्य शरीर में आता है, तो उसके ऊपर वे पूर्व संचित कुसंस्कार भी न्यूनधिक मात्रा में जमा होते हैं।

जो जीव नीच योनियों से पहलीबार मनुष्य शरीर में आया है उसमें पाशविक वृत्तियां अत्यधिक होती हैं। फिर इसके बाद प्रत्येक नये मनुष्य जन्म में वे कुप्रवृत्तियां धीरे धीरे कम होने लगती हैं। जैसे वन्य प्रदेशों में झाड़ झंखाड़, कँटीले, करील बबूल अपने आप प्रचुर परिमाण में उगे रहते हैं, इन निरर्थक, निरुपयोगी, दुखदायी पेड़ पौधों के उगने और बढ़ने की परम्परा यों ही अपने आप चलती रहती है परन्तु यदि किन्हीं अच्छे फलों की अन्न, या औषधियों की खेती करनी हो तो विशेष परिश्रम पूर्वक भूमि साफ करनी होगी, उसकी जुताई, गुड़ाई करनी पड़ेगी और बीज बोने के बाद सिंचाई, नराई और रखवाली की व्यवस्था की जायगी तब कहीं अभीष्ट फसल उपलब्ध होगी। यह बात मनुष्य के सम्बन्ध में भी है। आरंभ में उसकी मनोभूमि जंगली भूमि की भांति अव्यवस्थित होती है, उसे सुसंस्कृत बनाने के लिए ऐसा ही प्रयत्न करना पड़ता है जैसा कि जंगल को काटकर फलों की खेती के लिए किया जाता है। इस प्रयत्न को संस्कार दीक्षा, द्विजत्व, यज्ञोपवीत आदि नामों से पुकारते हैं।

पहला जन्म माता के पेट से होता है। दूसरा जन्म आचार्य द्वारा दिया जाता है। आचार्य अपने शिष्य की मनोभूमि को साफ करता है, उसमें बीज बोता है संस्कारों को स्थापित करता है, उन्हें सींचता है, सुधारता है, रखवाली करता है और इन प्रयत्नों द्वारा बालक को कुछ से कुछ बना देता है। पहले की जंगली भूमि, कुछ दिन बाद सुरम्य उपवन बन जाती है। वैसे वह एक ही वस्तु है, पर इन रूपों में भारी अन्तर होजाने के कारण इसे काया पलट या दूसरा जन्म भी कहा जासकता है। असंस्कृत, जन्म जन्मान्तरों के पाशविक संस्कारों से युक्त मनोभूमि का दैवी सम्पत्तियों से सुसज्जित बन जाना भी मानसिक कायाकल्प है इसे दूसरा जन्म कह सकते हैं। यही द्विजत्व है। माता के स्तनों का दूध पीकर बालक का शरीर बढ़ता है, आचार्य की आत्मा का रस पीकर शिष्य का अन्तःकरण विकसित होता है। चिड़ियां अपने अंडे को अपनी छाती के नीचे रखकर 'सेती' हैं, उसे अपनी गर्मी से पकाती हैं और अंडे से बच्चा निकालती हैं। आचार्य भी अपने शिष्य को अपने आत्म तेज की गर्मी से ऊष्मा प्रदान करता है, उस पर छाती देकर बैठता है, और अन्त में पशुता का अण्डा-खोल-फोड़ कर उसमें से मनुष्य निकालता है। इस प्रकार आचार्य द्वारा जन्म दिये हुए मनुष्य को द्विज कहते हैं। जन्म से सभी शूद्र होते हैं पर संस्कार से द्विज बन जाते हैं।

द्विजों को यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है। यज्ञोपवीत में तीन तार होते हैं। इन तीन तारों को तीन प्रतिज्ञाओं के प्रतीक रूप में धारण किया जाता है। संसार में समस्त कष्टों के कारण तीन हैं (१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव। ज्ञान की कमी से, शक्ति की कमी से, वस्तुओं की कमी से, लोगों को तरह तरह की कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। द्विज अपने जीवन को उद्देश्य मय बनाता है, संसार को दुखों से छुड़ाकर सुखी बनाने में अपने को खपा देना यही उसका लक्ष होता है। इसलिए

वह उपरोक्त तीनों दुख हेतुओं को मिटाने के लिए अपनी रुचि और योग्यता का कार्य अपने जिम्मे लेता है। जिसने अज्ञान निवारण और ज्ञान प्रसार का कार्य अपने ऊपर लिया है उसे ब्राह्मण कहते हैं। जो अशक्ति को हटाकर शक्ति की वृद्धि करता है, अपनी शक्ति से अशक्तों की सहायता और दुष्टों का दमन करता है वह क्षत्री कहा जाता है। जो वस्तुओं के अभाव को दूर करने के लिए उत्पादन एवं आयात निर्यात की व्यवस्था करता है वह वैश्य कहलाता है। तीनों ही कार्य समान रूप से उपयोगी, आवश्यक एवं महत्व के हैं। किसी में छोटाई बड़ाई नहीं, किसी का पुण्य कम नहीं, किसी का गौरव कम नहीं। इनमें से एक लक्ष को प्रधान रूप से चुनना, रुचि, योग्यता, एवं परिस्थितियों पर निर्भर होता है, इसलिए वर्ण व्यवस्था का निर्माण गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर अवलम्बित है।

यज्ञोपवीत धारण करना एक प्रतिज्ञा प्रतीक है। इस तीन लड़ों के सूत्र को धारण करके द्विज अपने कंधे पर तीन उत्तरदायित्वों का भार स्वीकार करता है। उन्हें पूरा करने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करता है। त्रिवर्ग के कई पहलू हैं। ये सभी पहलू आंशिक रूप से यज्ञोपवीत धारण करने वाले को स्पर्श करते हैं (१) अज्ञान, अशक्ति और अभाव को दूर करना (२) देवऋण (दानदेना) ऋषि ऋण (सतोगुण बढ़ाना) पितृऋण चुकाना (ऐसे काम करना जिससे बापदादों के नाम की भी प्रतिष्ठा हो) (३) ईश्वर, जीव प्रकृति का तत्वज्ञान समझ कर आध्यात्म मार्ग की ओर अभिमुख होना (४) ब्रह्मा (उत्पत्ति) विष्णु (विकाश) महेश (नाश) की त्रिदेव युक्त सृष्टि को देव भाव से पूजनीय समझना, सेवक रहना, (संसार की वस्तुओं को अपनी न मानना) (५) सृष्टि के सत, रज, तम युक्त त्रिविध रूप को समझते हुए उसमें से उपयोगी अंश लेना अनुपयोगी छोड़ना (६) माता, पिता, आचार्य के प्रति अपना कर्तव्य पालन उचित रूप से करना (७) भूत भविष्य, वर्तमान का ध्यान रखना। भूतकाल की बातों से अनुभव लेकर सुन्दर भविष्य का निर्माण करने के लिए, वर्तमानकाल का कार्यक्रम निर्धारित करना (८) धर्म अर्थ काम संसार के यह तीन प्रयोजन हैं। इन तीन सूत्रों को ब्रह्मग्रन्थि रूपी मोक्ष के साथ बांध देना (९) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ। जीवन व्यवस्था के इन तीन आश्रमों को सन्यास रूपी ब्रह्म ग्रन्थि के साथ जोड़ना (१०) योग, यज्ञ, तप इन तीन दिव्य कर्मों को जीवन में ओत प्रोत करना (११) देश-धर्म और जाति इनकी श्रीवृद्धि करना। इस प्रकार के और भी त्रिवर्ग हैं। उनका उत्तर दायित्व भी द्विज के ऊपर आता है।

यज्ञोपवीत की तीन लड़ों में नौ तार होते हैं। पीछे के पृष्ठों पर नौनिद्धियों का वर्णन किया जा चुका है, यह नौनिद्धियाँ ब्रह्मग्रन्थि से, गायत्री से बँधी हुई हैं। परमात्म दृष्टिकोण की स्थापना होते ही वे नौ सर्वोत्कृष्ट लाभ मिलने आरम्भ हो जाते हैं। दूसरा पक्ष यह है कि-मनुष्यकी श्रेष्ठता नौ गुणों पर निर्भर रहती है। रामायण में धनुष टूटने पर परशुराम जी आते हैं और राम लक्ष्मण पर क्रोध करते हैं। तब रामचन्द्रजी उनके क्रोध को शान्त करते हुए उनके बड़प्पन को प्रकट करते हैं और कहते हैं—"नवगुण परम पुनीत तुम्हारे।" यह नौ गुण यह हैं—(१) सत्य (२) अहिंसा (३) अस्तेय (४) इन्द्रिय निग्रह (५) अपरिग्रह (६) पवित्रता (७) कष्ट सहिष्णुता (८) विद्या (९) आस्तिकता। इन नौगुणों को धारण करना भी यज्ञोपवीत के नौ तारों का आदेश है।

यज्ञोपवीत को धारण करना, द्विजत्व में प्रवेश करना, साधारण काम नहीं है। यह महान कार्य केवल धार्मिक कर्मकाण्ड करते रहने से पूरा नहीं हो सकता। इसके लिए हृदय के गहन अन्तराल में परिवर्तन होना चाहिए वहां से प्रेरणा और स्फूर्ति आनी चाहिए। बाहरी उत्साह

तो क्षणिक होता है, दूसरों के द्वारा भरा हुआ जोश कुछ समय में समाप्त होजाता है पर जो स्फुरणा अन्तःकरण से निकलती है वह ज्वाला मुखी पर्वत की अग्निशिखा की भांति प्रज्वलित ही रहती है। यह अग्निशिखा प्रज्वलित होजाने पर साधक का अन्तःकरण सुदृढ़ आधार पर खड़ा होजाता है और अध्यात्मिक यात्रा आगे बढ़ने लगती है। यह आन्तरिक निर्माण तब होता है जब आत्मा में ब्राह्मी भावनायें हिलोरें लेती हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें भगवती गायत्री माता की शरण में जाना पड़ता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि विश्वमाता गायत्री में यज्ञोपवीत का गुह्य रहस्य छिपा हुआ है, बिना गायत्री के यज्ञोपवीत अधूरा है, केवल चिन्ह पूजा मात्र है। इस लिए जो गायत्री सहित यज्ञोपवीत को धारण करता है वही सच्चे द्विजत्व का प्राप्त करता है। यों चिन्ह पूजा तो सभी करते हैं, लकीर तो सभी पीटते हैं पर द्विज वही है जो आत्म दृष्टि प्राप्त करके उद्देश्य मय जीवन जीता है। अन्यथा जन्म से तो सभी शूद्र हैं, जिसमें द्विजत्व नहीं वह शूद्र ही है भले भी अपने को वह सवर्ण कहता रहे। इसलिए द्विजत्व को प्राप्त करने के लिए गायत्री की शरणागति आवश्यक है।

ब्रह्म सन्ध्या।

गायत्र्या या युता सन्ध्या ब्रह्म सन्ध्या तु सामता।
कीर्तितं सर्वतः श्रेष्ठं तदनुष्ठान मागमैः॥

(या सन्ध्या) जो सन्ध्या (गायत्र्या) गायत्री से (युता) युक्त होती है (सा तु) वह (ब्रह्म सन्ध्या) ब्रह्म सन्ध्या (मता) कहलाती है। (आगमैः) शास्त्रों ने (तदनुष्ठानं) उसका अनुष्ठान (सर्वतः श्रेष्ठ) सबसे श्रेष्ठ (कीर्तितं) कहा है।

आचमनं शिखाबन्धः प्राणायामोऽघमर्षणम्।
न्यासश्चोपासना यांतु पंच कोष मता बुधैः॥

(आचमनं) आचमन (शिखाबन्धः) शिखा बांधना (प्राणायामः) प्राणायाम (अघमर्षणं) अघमर्षण (च) और (न्यासः) न्यास ये (पंच कोषाः) पांच कोष (बुधैः) विद्वानों ने (उपासनायां) उपासना (मताः) स्वीकार किये हैं।

सन्ध्या बन्दन की अनेकों विधियां हैं। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत अनेकों सम्प्रदाय हैं और उन सम्प्रदायों की अपनी अपनी अलग उपासना विधि हैं। हनुमान चालीसा पाठ से लेकर प्रतिमा पूजन तक और हठ योग से लेकर समाधि स्थापना तक असंख्यों पूजा विधान हैं। इन विधानों की प्रमाणिकता सिद्ध करने वाले प्राचीन अभिवचन पुस्तकों में उपलब्ध हो ही जाते हैं। इस प्रकार नित्यकर्म की संध्याके अनेकों रूप दृष्टि गोचर होते रहते हैं।

जैसे नदियों में गंगा का अपना एक अनोखा स्थान है, पुष्पों में कमल, पक्षियों में हंस, पशुओं में गौ, बनस्पतियों में तुलसी का एक विशेष महत्व है, उसी प्रकार संध्याओं में ब्रह्म संध्या की महिमा निराली है। यों तो सभी नदियां, सभी पुष्प, सभी पशु, सभी पक्षी, सभी बनस्पति अपने अपने महत्व रखती हैं, परन्तु गंगा, कमल, हंस, गौ, तुलसी आदि में कुछ अध्यात्मिक तत्व इतनी अधिक मात्रा में है कि सतोगुण के आकांक्षियों के लिए इन उपरोक्त वस्तुओं की तुलना में और कोई नहीं जँचती। सन्ध्या बन्दन में भी ब्रह्म संध्या की श्रेष्ठता इसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ मानी गई है।

गायत्री मंत्र द्वारा जो संध्या की जाती है उसे ब्रह्म संध्या कहते हैं। शास्त्रों ने उसके अनुष्ठान को सर्वश्रेष्ठ कहा है। कारण कई हैं। एक तो यह कि केवल एक ही मंत्र कंठाग्र होने से

सारे संध्या वन्दन का विधान पूरा होजाता है। सब लोग सुशिक्षित और संस्कृत प्रेमी नहीं होते। सब के लिए मंत्रों को शुद्ध रूप से पढ़ना और कंठाग्र करना कठिन होता है। फिर बहुत से मंत्रों को कंठाग्र करने के प्रयत्न में सफल न होने के कारण अनेकों इच्छुक व्यक्ति निरुत्साहित हो जाते हैं। याद भी करलें तो वे मंत्र उन्हें तोता रटंत की तरह कंठाग्र तो रहते हैं पर उनका शब्दार्थ और भावार्थ याद नहीं होता। यदि याद भी होजाय तो संध्या बन्दन के समय उन भावों से हृदय और मस्तक को ओत प्रोत करना कष्ट साध्य प्रतीत होता है। जब तक एक मंत्र पर भावनाऐं भली प्रकार केन्द्रित नहीं होपातीं तब तक दूसरे मंत्र का विनियोग आजाता है, इस प्रकार थोड़े थोड़े समय में मंत्रों की भावनाऐं बदलने से चित्त पर किसी एक भाव का संस्कार नहीं जम पाता।

गायत्री की ब्रह्म संध्या इन सब दोषों से मुक्त है। एक छोटे से मंत्र को कंठाग्र कर लेना कुछ कठिन नहीं है, फिर उसका शब्दार्थ, भावार्थ हृदयंगम कर लेना भी अधिक कष्ट साध्य नहीं है। देर तक, आदि से अन्त तक एक ही भावना पर चित्त को स्थिर रखने से मनोविज्ञान. शास्त्र के अनुसार वह भाव अन्तर्मन के बहुत गहरे अन्तःराल में उतर कर सुदृढ़ होता है और तदनुसार जीवन क्रियाऐं उद्भूत होती हैं। इसे ही सिद्धि कहते हैं। ब्रह्मसंध्या के साधक को सिद्धि शीघ्र होती है।

किसी मूल्यवान और महत्वपूर्ण वस्तु को बहुत सुरक्षित रखा जाता है। खुली जगह से बचाने के लिए एक मकान की चहार दिवारी खड़ी की जाती है, उसके भीतर एक छोटी कोठरी बनाते हैं, उसके भीतर एक बड़ी अलमारी होती है उसके अन्दर एक छोटी संदूकची में जेवर जवाहरात रखे जाते हैं। आत्मा पंच कोषों के भीतर बैठा है। अन्न मय, प्राण मय, मनोमय, विज्ञान मय, आनन्द मय कोषों के भीतर आत्मा का निवास है। मन्दिरों में भी देव मूर्तियाँ कई आवरणों के अन्दर रहती हैं। यह आवरण इस लिए खड़े किये जाते हैं कि अधिकारी व्यक्ति ही वहां तक पहुंच सकें। मंत्र विज्ञान की गोपनीयता और साधना क्लिष्टता का भी रहस्य यही है कि जिनकी लगन सच्ची है, निष्ठा पक्की है वे ही उस लाभ को प्राप्त करें। शरीर को जैसे हम कई कपड़ों से ढके रहते हैं उसी प्रकार ब्रह्म संध्या भी पंच कोषों के आवरण से आवृत है। इन आवरणों को (१) आचमन (२) शिखा बन्धन (३) प्राणायाम (४) अघमर्षण (५) न्यास, कहते हैं। इनका विवेचन नीचे किया जाता है।

सन्ध्या करने के लिए प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में नित्य कर्म से निवृत्त होकर, शरीर को शुद्ध करके, स्वच्छ वस्त्र धारण करके ऐसे स्थान में बैठना चाहिए जो एकान्त और खुली वायु का हो। चींटी आदि को हटाने के लिए भूमि को झाड़ बुहार लेना चाहिए। उस पर जल छिड़क कर शुद्धि कर लेनी चाहिए। कुश का आसन खजूर की चटाई या कोई और घास पात का बना हुआ आसन लेना चाहिए। न मिलने पर सूत का आसन बिछाया जासकता है। ऊन, सनचर्म आदि के आसनों का उपयोग न करना चाहिए क्योंकि इनमें तामसिक प्राण होता है। आसन बिछाकर पूर्व की ओर मुख करके, पालथी मार कर मेरु दंड सीधा रख कर बैठना चाहिए। पास में तांबे के लोटे में जल भर कर रख लेना चाहिए। तांबे का पात्र न मिलने पर चांदी कांसा, पीतल, मिट्टी का पात्र काम में लिया जासकता है। चित्त को शान्त और सतोगुणी बनाकर संध्या पर बैठना चाहिए।

(१) आचमन—जल भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर उसका तीन बार आचमन करना चाहिए। बायें हाथ से पात्र को उठाकर हथेली में थोड़ा गड्ढा सा करके उसमें जल भरे और गायत्री मंत्र पढ़े, मंत्र पूरा होने पर उस जल को पीलें। दूसरी बार

फिर उसी प्रकार हथेली में जल भरे और मंत्र पढ़ कर उसे पीले। तीसरी बार भी इसी प्रकार करें। तीन बार आचमन करने के उपरान्त दाहिने हाथ को पानी से धो डाले। कंधे पर रखे हुए अँगोछे से हाथ मुंह पोंछले, जिसने हथेली, ओठ और मूँछ आदि पर आचमन किये हुए हल्कि जल का अंश लगा न रह जावे।

तीन आचमन त्रिगुण मयी माता की त्रिविधि शक्तियों को अपने अन्दर धारण करने के लिए है। प्रथम आचमन के साथ सतोगुणी विश्व व्यापी, सूक्ष्म शक्ति 'ह्रीं' शक्ति का ध्यान करते हैं, और भावना करते हैंकि विद्युत सरीखी सूक्ष्म नील किरणें मेरे मंत्रोच्चार के साथ साथ सब ओर से इस जल में प्रवेश कर रही हैं और यह जल उस शक्ति से ओत प्रोत होरहा है। आचमन करने के साथ जल में संमिश्रित वह सब शक्तियां अपने अन्दर प्रवेश करने की भावना करनी चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि मेरे अन्दर सतोगुण का पर्याप्त मात्रा में प्रवेश हुआ है। इसी प्रकार दूसरे आचमन के साथ रजोगुणी 'श्रीं' शक्ति की पीत वर्ण किरणें को जल में आकर्षित होने और आचमन के साथ शरीर में प्रवेश होने की भावना करनी चाहिए। तीसरे आचमन में तमोगुणी 'क्लीं' भावना की रक्त वर्ण शक्तियों के अपने में धारणा होने का भाव जागृत करना चाहिए।

जैसे बालक माता का दूध पीकर उसके गुणों और शक्तियों को अपने में धारण करता है और परिपुष्ट होता है। उसी प्रकार साधक मंत्र बल से आचमन के जल को गायत्री माता के दूध के समान बना लेता है, और उसका पान करके अपने आत्म बल को बढ़ाता है। इस आचमन से उसे त्रिविधि ह्रीं, श्रीं, क्लीं शक्ति से युक्त आत्मबल मिलता है तदनुसार उसको आत्मिक पवित्रता, सांसारिक समृद्धि और सुदृढ़ बनाने वाली शक्ति की प्राप्ति होती है।

(२) शिखा बन्धन—आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके उसमें ऐसी गांठ लगानी चाहिए जो सिरा खींचने से खुल जाय। इसे आधी गांठ कहते हैं। गांठ लगाते समय गायत्री मंत्र का उच्चारण करते जाना चाहिए।

शिखा, मस्तिष्क के केन्द्र बिन्दु पर स्थापित है। जैसे रेडियो के ध्वनि विस्तारक केन्द्रों में ऊंचे खंभे लगे होते हैं और वहाँ से ब्राडकास्ट की तरंगें चारों ओर फेंकी जाती हैं उसी प्रकार हमारे मस्तिष्क का विद्युत भंडार शिखा स्थान पर है। इस केन्द्र में से हमारे विचार संकल्प और शक्ति परमाणु प्रति घड़ी बाहर निकल २ कर आकाश में दौड़ते रहते हैं। इस प्रवाह से शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है और अपना मानसिक कोष घटता है। इसका प्रतिरोध करने के लिए शिखा में गांठ लगा देते हैं। सदा गांठ लगाये रहने से अपनी मानसिक शक्तियों का बहुत सा अपव्यय बच जाता है।

संध्या करते समय विशेष रूप से गांठ लगाने का प्रयोजन यह है कि रात्रि को सोते समय यह गांठ प्रायः शिथिल होजाती है या खुल जाती है। फिर स्नान करते समय केश शुद्धि के लिए शिखा को खोलना भी पड़ता है। संध्या करते समय अनेक सूक्ष्म तत्व आकर्षित होकर अपने अन्दर स्थित होते हैं वे सब मस्तक केन्द्र से निकल कर बाहर न उड़ जांय और कहीं अपने को साधना के लाभ से वंचित न रहना पड़े इसलिए शिखा में गांठ लगादी जाती है। फुटबाल के भीतर की रबड़ में एक हवा भरने की नली होती है इसमें गांठ लगा देने से भीतर भरी हुई वायु बाहर नहीं निकलने पाती। साइकिल के पहियों में भरी हुई हवा को रोकने के लिए भी एक छोटी वालट्यूब नामक रबड़ की नली लगी होती है जिसमें होकर हवा भीतर तो जासकती है पर बाहर नहीं आसकती, गांठ लगी हुई शिखा से भी यही प्रयोजन पूरा होता है। वह बाहर के विचार और शक्ति समूह को ग्रहण तो करती

है पर भीतर के तत्वों का अनावश्यक व्यय नहीं होने देती।

आचमन से पूर्वशिखा बन्धन इसलिए नहीं होता क्योंकि उस समय त्रिविधि शक्ति का आकर्षण जहां जल द्वारा होता है वहाँ मस्तिष्क के मध्य केन्द्र द्वारा भी होता है। इस प्रकार शिखा खुली रहने से दुहरा लाभ होता है। तत्पश्चात् उसे बांध दिया जाता है।

(३) प्राणायाम—सन्ध्या का तीसरा कोष है प्राणायाम अथवा प्राणाकर्षण। गायत्री की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए पूर्व पृष्ठों में यह बताया जाचुका है कि सृष्टि दो प्रकार की है। (१) जड़—अर्थात् परमाणुमयी (२) चैतन्य—अर्थात् प्राण मयी। निखिल विश्व में जिस प्रकार परमाणुओं के संयोग वियोग से विविध प्रकार के दृश्य उपस्थित होते रहते हैं उसी प्रकार चैतन्य-प्राण-सत्ता की हलचलें चैतन्य जगत की विविधि घटनाएं घटित होती हैं। जैसे वायु अपने क्षेत्र में सर्वत्र भरी हुई है उसी प्रकार वायु से भी असंख्य गुना सूक्ष्म चैतन्य प्राण तत्व सर्वत्र व्याप्त है। इस तत्व की न्यूनाधिकता से हमारा मानस क्षेत्र बलवान तथा निर्बल होता है। इस प्राण तत्व को जो जितनी मात्रा में अधिक आकर्षित कर लेता है, धारण कर लेता है, उसकी आन्तरिक स्थिति उतनी ही बलवान होजाती है। आत्म तेज, शूरता, दृढ़ता, पुरुषार्थ, विशालता दूरदर्शिता, महानता, सहन शीलता, धैर्य, स्थिरता, सरीखे गुण प्राणशक्ति के परिचायक हैं। जिन में प्राण कम होता है वे शरीर से स्थूल भले ही हों पर डरपोक, दब्बू, झेंपने वाले, कायर, अस्थिर मति, संकीर्ण, अनुदार, स्वार्थी, अपराधी मनोवृत्ति के, घबराने वाले, अधीर, तुच्छ नीच विचारों में ग्रस्त, एवं चंचल मनोवृत्ति के होते हैं। इन दुर्गुणों के होते हुए कोई व्यक्ति महान नहीं बन सकता। इसलिए साधक को प्राण शक्ति अधिक मात्रा में अपने अन्दर धारण करने की आवश्यकता होती है। जिस क्रिया द्वारा विश्व व्यापी प्राण तत्व में से खींचकर अधिक मात्रा में प्राण शक्ति को हम अपने अन्दर धारण करते हैं उसे प्राणायाम कहा जाता है।

प्राणायाम के समय मेरुदंड को विशेष रूप से सावधान होकर सीधा कर लीजिए। क्योंकि मेरुदंड में स्थित इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों द्वारा प्राण शक्ति का आवागमन होता है और यदि रीढ़ टेढ़ी झुकी हुई रहे तो मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी तक प्राण की धारा निर्बाध गति से न पहुंच सकेगी वह प्राणायाम का वास्तविक लाभ न मिल सकेगा।

प्राणायाम के चार भाग हैं। (१) पूरक (२) अन्तर कुंभक (३) रेचक (४) वाह्य कुंभक। वायु को भीतर खींचने का नाम पूरक, वायु को भीतर रोके रहने का नाम अन्तर कुंभक, वायु को बाहर निकालने का नाम रेचक और बिना सांस के रहने को, वायु बाहर रोके रहने को वाह्य कुंभक कहते हैं। इन चारों के लिए गायत्री मंत्र के चार भागों की नियुक्ति की गई है। पूरक के साथ 'ॐ भूर्भुवः', अन्तर कुंभक के साथ 'तत्सवितुर्वरेण्यं', रेचक के साथ 'भर्गो देवस्य धीमहि', वाह्य कुंभक के साथ 'धियोयोनः प्रचोदयात्' मंत्र भाग का जप होना चाहिए।

(अ) स्वस्थ चित्त से बैठिये, मुख को बन्द कर लीजिए। नेत्रों को बन्द या अधखुले रखिए। अब सांस को धीरे धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना आरंभ कीजिए और 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस मंत्र भाग का मन ही मन उच्चारण करते चलिए। और भावना कीजिए कि "विश्व का भी दुःख नाशक, सुख स्वरूप, ब्रह्म की चैतन्य प्राण शक्ति को मैं नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूं। इस भावना और इस मंत्र भाग के साथ धीरे धीरे सांस खींचिए और जितनी अधिक वायु भीतर भर सकें भर लीजिये।

(ब) अब वायु को भीतर रोकिए और "तत्सवितुर्वरेण्यं" इस भाग का जप कीजिए साथ ही भावना कीजिए कि "नासिका द्वारा

खींचा हुआ वह प्राण श्रेष्ठ है। सूर्य के समान तेजस्वी है। उसका तेज मेरे अंग प्रत्यंग में रोमर में भरा जारहा है।" इस भावना के साथ पूरक की अपेक्षा आधे समय तक वायु को भीतर रोक रखे।

(स) अब नासिका द्वारा वायु को धीरे २ बाहर निकालना आरंभ कीजिए और "भर्गो देवस्य धीमहि" इस मंत्र भाग को जपिये तथा भावना कीजिए कि "यह दिव्य प्राण मेरे पापों का नाश करता हुआ विदा होरहा है।" वायु को निकालने में प्रायः उतना ही समय लगाना चाहिए जितना वायु खींचने में लगाया था।

(द) जब भीतर की सब वायु बाहर निकल जावे तो जितनी देर वायु को भीतर रोक रखा था उतनी ही देर बाहर रोक रखें अर्थात् बिना सांस लिए रहें और 'धियो योनः प्रचोदयात्' इस मंत्र भाग को जपते रहें। साथ ही भावना करें कि "भगवती वेदमाता आद्यशक्ति गायत्री हमारी सद्बुद्धि को जागृत कर रही हैं।"

यह एक प्राणायाम हुआ। अब इसी प्रकार पुनः इन क्रियाओं की पुनरुक्ति करते हुए दूसरा प्राणायाम करें। संध्या में यह पांच प्राणायाम करने चाहिये। जिससे शरीर स्थित प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नामक पांचों प्राणों का व्यायाम, प्रस्फुरण और परिमार्जन होजाता है।

(४) अघमर्षण—अघमर्षण कहते हैं—पाप के नाश करने को। गायत्री की पुण्य भावना के प्रवेश करने से पाप का नाश होता है। प्रकाश के आगमन के साथ साथ अन्धकार नष्ट होता है, पुण्य संकल्पों के उदय के साथ साथ ही पापों का संहार भी होता है। बलवृद्धि के साथ साथ निर्बलता का अन्त होता चलता है। ब्रह्म संध्या की ब्राह्मी भावनाएं हमारे अघ का मर्षण करती चलती हैं।

अघमर्षण के लिए दाहिने हाथ पर की हथेली पर जल लेकर उसे दाहिने नथुने के समीप ले जाना चाहिए। समीप का अर्थ है—छै अंगुल दूर। बांए हाथ के अंगूठे से बांया नथुना बन्द करलें और दाहिने नथुने से धीरे धीरे सांस खींचना आरंभ करें। सांस खींचते समय भावना करें कि "गायत्री माता का पुण्य प्रतीक यह जल अपनी दिव्य शक्तियों सहित पापों का संहार करने के लिए सांस के साथ मेरे अन्दर प्रवेश कर रहा है। और भीतर से पापों को, मलों को, विकारों को, संहार कर रहा है।"

जब पूरी सांस खींच चुकें तो बांया नथुना खोलदें और दाहिना नथुना अंगूठे से बन्द करदें और सांस बाहर निकालना आरंभ करें। दाहिनी हथेली पर रखे हुए जल को अब बाएं नथुने के सामने करें और भावना करें कि "नष्ट हुए पापों की लाशों का समूह सांस के साथ बाहर निकल कर इस जल में गिर रहा है।' जब सांस पूरी बाहर निकल जाय तो उस जल को बिना देखे घृणा पूर्वक बांई ओर पटक देना चाहिए।

अघमर्षण क्रिया में जल को हथेली पर भरते समय 'ॐ भूर्भुवः स्वः, दाहिने नथुने से सांस खींचते समय 'तत्सवितुर्वरेण्यं, इतना मंत्र भाग जपना चाहिए और बांए नथुने से सांस छोड़ते समय 'भर्गोदेवस्य धीमहि' और जल पटकते समय 'धियोयोनः प्रचोदयात्' इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।

यह क्रिया तीन बार करनी चाहिए जिससे काया के, वाणी के और मन के त्रिविधि पापों का संहार होसके।

(५) न्यास—न्यास कहते हैं धारण करने को। अंग प्रत्यंगों में गायत्री की सतोगुणी शक्ति को धारण करने, स्थापित करने, भरने, ओत प्रोत करने के लिए न्यास किया जाता है। गायत्री के प्रत्येक शब्द का महत्वपूर्ण मर्मस्थलों का घनिष्ट संबंध है। जैसे सितार के अमुक भाग में, अमुक आघात के साथ उंगली का आघात लगने से अमुक प्रकार अमुक ध्वनिका स्वर निकलते हैं उसी प्रकार शरीर वीणाको संध्याकालमें उंगलियों के सहारे दिव्य भाव से झंकृत किया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि स्वभावतः अपवित्र रहने वाले शरीर से दैवी सान्निध्य ठीक प्रकार नहीं होसकता इसलिए उसके प्रमुख स्थानों में दैवी पवित्रता स्थापित करके उसमें इतनी मात्रा दैवी तत्वों की स्थापित करती जाती है कि वह दैवी साधना का अधिकारी बन जावे।

न्यास के लिए भिन्न भिन्न उपासना विधियों में अलग अलग विधान है कि किन उंगलियों को काम में लाया जाय। गायत्री की ब्रह्म संध्या में अंगूठा और अनामिका उंगली का प्रयोग प्रयोजनीय ठहराया गया है। अंगूठा और अनिमिका उंगली को मिलाकर विभिन्न अंगों का स्पर्श इस भावना से करना चाहिए कि मेरे यह अंग गायत्री शक्ति से पवित्र तथा बलवान होरहा है। अंग स्पर्श के साथ निम्न प्रकार मंत्रोच्चार करना चाहिए—

ॐ भूर्भुवः स्वः—मूर्धाये

तत्सवितुः—नेत्राभ्यां

वरेण्यं—कर्णाभ्यां

भर्गो—मुखाय

देवस्य—हृदयाय

धियोयोनः—नाभ्यै

प्रचोदयात्—हस्तपादाभ्यां

यह सात अंग शरीर ब्रह्माण्ड के सात लोक हैं अथवा यों कहिए कि आत्मा रूपी सविता के सात वाहन अश्व हैं। शरीर सप्ताह के सात दिन हैं। यों साधारणतः दस इन्द्रियां मानी जाती हैं पर गायत्री योग के अन्तर्गत सात इन्द्रियां मानी गई हैं। (१) मूर्धा (मस्तिष्क, मन) (२) नेत्र (३) कर्ण (४) वाणी और रसना (५) हृदय, अन्तःकरण (६) नाभि, जननेन्द्रिय (७) श्रमण (हाथ पैर) इन सातों में अपवित्रता न रहे, इनके द्वारा कुमार्ग को न अपनाया जाय, अविवेक पूर्ण आचरण न हो इस प्रतिरोध के लिए न्यास किया जाता है। इन सात अंगों में भगवती की सात शक्तियां निवास करती हैं उन्हें उपरोक्त न्यास द्वारा जागृत किया जाता है। जागृत हुई मातृकाऐं अपने अपने स्थान की रक्षा करती हैं, अवांछनीय तत्वों का संहार करती हैं। इस प्रकार साधक का अन्तः प्रदेश ब्राह्मी शक्ति का सुदृढ़ दुर्ग बन जाता है।

इन पंच कोषों का विनियोग करने के पश्चात्—आचमन, शिखाबन्ध, प्राणायाम, अघमर्षण, न्यास से निवृत्त होने के पश्चात् गायत्री का जप और ध्यान करना चाहिए। संध्या तथा जप में मंत्रोच्चार इस प्रकार करना चाहिए कि ओठ हिलते रहें शब्दोच्चार होता रहे पर निकट बैठा हुआ व्यक्ति उसे सुन न सके।

———

विघ्न विदारक-अनुष्ठान।

दैन्यं रुक्शोक चिन्तानां विरोधाक्रमणापदाम्।
कार्यं गायत्र्यनुष्ठानं भयानां वारणायच॥

(दैन्य रुक् शोक चिन्तानां) गरीबी, रोग, शोक, चिन्ता (विराधाक्रमणापदां) विरोध, आक्रमण, आपत्तियाँ (च) और (भयानां) भय इनके (वारणाय) निवारण के लिए (गायत्र्यनुष्ठानं) गायत्री का अनुष्ठान (कार्यं) करना चाहिए।

जायते स्थितिरस्मात्साभिलाषा मन ईप्सिताः।
यतः सर्वेऽभि जायन्ते यथाकालं हि पूर्णताम्॥

(अस्मात्) इस अनुष्ठान से (सा) वह (स्थितिः) स्थिति (जायते) पैदा होती है (यतः) जिससे (सर्वे) समस्त (मन ईप्सिताः) मनोवांछित (अभिलाषाः) अभिलाषाऐं (यथाकालं) यथा समय (पूर्णता) पूर्णता को (जायन्ते) प्राप्त होती हैं।

अनुष्ठानात्तु वै तस्माद् गुप्ताध्यात्मिक शक्तयः।
चमत्कार मया लोके प्राप्यन्तेऽनेकधा बुधैः॥

(तस्मात्) उस (अनुष्ठानात्तु) अनुष्ठान से (बुधैः) बुद्धिमानों को (लोके) संसार में (चमत्कार मयाः) चमत्कार से पूर्ण (अनेकधाः) अनेक प्रकार की (गुप्ताध्यात्मिक शक्तयः) गुप्त आध्यात्मिक शक्तियां (प्राप्यन्ते) प्राप्त होती हैं।

साधारणतः नित्य कर्म आत्मशुद्धि, सात्विकता की वृद्धि, परमात्मा की प्राप्ति आदि आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिए गायत्री की निरन्तर उपासना आवश्यक है, उसको अपने दैनिक कार्यक्रम में महत्व पूर्ण स्थान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त किन्हीं विशेष प्रयोजनों के लिए, विशेष अवसरों पर उसका विशेष रूप से आवाहन किया जाता है। जैसे बच्चा साधारणतः दिन भर मां को पुकारता रहता है और मां भी उसे उत्तर देकर उसका समाधान करती रहती है। यह लाड़दुलार यथावत् चलता रहता है और मां बेटा दोनों प्रसन्न रहते हैं। पर किसी विशेष आपत्ति के अवसर पर, गिरपड़ने, चोट लगने पर, चींटी के काट खाने पर, बन्दर बिल्ली आदि से डर जाने पर, बच्चा विशेष रूप से मां को पुकारता है, उसके शब्द तो वही होते हैं 'माँ' पर उन शब्दों के साथ भावलहरी, उच्चारण विधि, आतुरता, असाधारण होती है, इस असाधारणता को माता तुरन्त समझ जाती है और सब काम छोड़कर बालक के पास दौड़ी जाती है।

लोग आपस में एक दूसरे का नाम लेकर साधारण रीति से पुकारते रहते हैं और एक दूसरे को उत्तर प्रत्युत्तर देते रहते हैं। पर कोई आकस्मिक आपत्ति आने पर, दुर्घटना होने पर एक व्यक्ति असाधारण विधि से दूसरे का नाम लेकर पुकारता है. इस पुकारने में सहायता की आवश्यकता छिपी होती है। इस छिपी आवश्यकता को उसका मित्र तुरन्त समझ लेता है है और सब काम को छोड़ कर उसकी सहायता के लिए दौड़ा आता है। दैवी तत्वों के सम्बन्ध में भी यही बात है। साधारणतः सभी लोग राम का नाम लेते हैं, राम राम, कृष्ण कृष्ण कहते रहते हैं, उनकी श्रद्धा के अनुसार उन्हें फल भी मिलता रहता है, पर कभी कभी भक्त की पुकार असाधारण श्रद्धा और आतुरता से भरी हुई होती है, ऐसी स्थिति कभी निष्फल नहीं होती। गज की पुकार पर भगवान का नंगे पैरों दौड़ना, नरसी की पुकार पर हुण्डी बरसाना, द्रोपदी के पुकारते ही चीर बढ़ाना, प्रहलाद की पुकार पर खंभ से नृसिंह प्रकट होना, जैसी आकस्मिक सहायताएं भक्तों को अविलम्ब प्राप्त होती रही हैं और होती हैं।

ऐसी ही असाधारण स्थितियों में गायत्री माता को भी पुकारा जासकता है। जब मनुष्य दरिद्रता से, आर्थिक संकट से ग्रस्त होरहा हो, पैसे के बिना अत्यन्त आवश्यक कार्य रुके पड़े हों, बीमारी ने अड्डा जमा रखा हो, आये दिन स्वास्थ्य खराब रहता हो, कोई कष्ट साध्य रोग पीछे पड़ गया हो, किसी प्रियजन की मृत्यु अथवा विछोह होने से, धन आदि का नाश होने से, चित्त शोकाकुल होरहा हो, चिन्ताएं सता रही हों, किसी के विरोध अथवा आक्रमण से अपने मान, धन तथा शरीर की हानि होने की आशंका हो, कोई आकस्मिक आपत्ति आगई हो, विपदा के बादल सिर पर मंडरा रहे हों, भविष्य अन्धकार मय दिखाई पड़ रहा हो, शत्रुओं ने निष्ठुर रुख अपनाया हुआ हो, भय से, अनिष्ट की संभावना से हृदय धड़क रहा हो, आवश्यक कार्य-किसी विघ्न के आजाने से रुक गया हो, सफलता की आशा क्षीण होगई हो अपने-विराने होगये हों, जिनसे सहयोग की आशा होनी चाहिए उन्होंने शत्रुता धारण कर रखी हो, तो मनुष्य का चित्त डावांडोल होजाता है। ऐसी स्थिति में उसका साहस शिथिल पड़ जाता है और बुद्धि कोई ठीक निर्णय करने में अपने को असमर्थ पाती है। ऐसी किंकर्तव्य विमूढ़ दशा में पड़े हुए व्यक्ति को गायत्री माता

को पुकारना चाहिए, सच्ची पुकार को सुनकर माता कभी चुप नहीं बैठती वह निश्चित रूप से सहायता के लिए दौड़ी आती है।

गज, द्रोपदी, नरसी, प्रह्लाद आदि की पुकार में एक विशेषता थी, उस विशेषता ने ही भगवान को तुरन्त सहायता करने के लिए विवश किया। गायत्री माता को भी आपत्ति के समय एक विशेषता के साथ पुकारना अभीष्ठ फल दायक होता है। इस विशेष पुकार को कहते हैं—'सवालक्ष अनुष्ठान'। इस अनुष्ठान से साधक में एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है जिनसे सूक्ष्मलोक से उसके पास आवश्यक साधन सामिग्रीं खिचकर आती है।

भूगर्भ विद्या के ज्ञाता जानते हैं कि मिट्टी में मिले हुए धातुओं के कण अपनी चुम्बक शक्ति से बड़ी खानों के रूप में बन जाते हैं। मनः शास्त्र के ज्ञाता जानते हैं कि एक प्रकार के विचार मस्तिष्क में धारण करने से उसका आकर्षण तत्व बनता है और उसके द्वारा आकाश में फैले हुए असंख्य विचार खींच कर वहां जमा होजाते हैं। इसी प्रकार अध्यात्म शास्त्र के ज्ञाता जानते हैं कि किसी तीव्र आकांक्षा की पूर्ति के लिए आत्मा अपनी शक्तियों को एकत्रित करके सूक्ष्म लोक में अपना चुम्बकत्व फेंकती है तो आवश्यक परिस्थितियाँ, घटनाएं तथा साधन सामिग्रियां सूक्ष्म प्रकृया द्वारा खिचती चली आती हैं और साधक उनसे सम्पन्न होजाता है। यह अध्यात्म विज्ञान की सूक्ष्म प्रणाली, वाह्यतः भगवान कृपा, दैवी सहायता या अदृश्य वरदान के नाम से पुकारी जाती है। प्रार्थना, पूजा, यजन, अनुष्ठान आदि के लाभ इसी विज्ञान पर अवलम्बित हैं।

गायत्री के सवालक्ष मंत्र जपने को अनुष्ठान कहते हैं। इस अनुष्ठान से अनेक बुद्धिमानों ने अब तक गुप्त आध्यात्मिक शक्तियां प्राप्त की हैं और उनके चमत्कार पूर्ण लाभों का रसा स्वादन किया है। जिस मनोरथ के लिए अनुष्ठान किया जाता है उस मार्ग की प्रधान बाधाएं दूर होजाती हैं. और कोई न कोई ऐसा साधन बन जाता है कि जो कठिनाई पहाड़ सी प्रतीत होती थी वह छोटी ढेला मात्र रह जाती है, जो बादल प्रलय वर्षाने वाले प्रतीत होते थे वे थोड़ी सी बूँदें छिड़क कर विलीन होजाते हैं। प्रारब्ध कर्मों के कठिन भोग बहुत हलके होकर, नाम मात्र का कष्ट देकर अपना कार्य समाप्त कर जाते हैं। जिन भोगों को भोगने में साधारणतः मृत्यु तुल्य कष्ट होने की संभावना थी वे गायत्री की कृपा से एक छोटा फोड़ा बनकर सामान्य कष्ट के साथ भुगत जाते हैं और अनेक जन्मों तक भुगती जाने वाली कठिन पीड़ाएं, हलके हलके छोटे छोटे रूप में इसी जन्म से समाप्त होकर आनन्द मय भविष्य का मार्ग साफ कर देती है। इस प्रकार के कष्ट भी गायत्री माता की कृपा ही समझने चाहिए।

कभी कभी ऐसा ही देखा जाता है कि जिस प्रयोजन के लिए अनुष्ठान किया गया था वह तो पूरा नहीं हुआ पर दूसरे अन्य महत्व पूर्ण लाभ प्राप्त हुए। किसी पूर्व संचित प्रारब्ध कर्म का फल भोग अनिवार्य हो और उसका पलटा जाना दैवी विधान के अनुसार उचित न हो, तो भी अनुष्ठान का लाभ तो मिलना है ही, वह किसी दूसरे रूप में अपना चमत्कार प्रकट करता है, साधक को कोई न कोई असाधारण लाभ उससे अवश्य होता है। उससे भविष्य में आने वाले संकटों की पूर्व ही अन्त्येष्ठि होजाती है और सौभाग्य के शुभ लक्षण प्रकट होते हैं। आपत्ति निवारण के लिए गायत्री का सवालक्ष अनुष्ठान—एक राम बाण जैसा आध्यात्मिक साधन है। किसी वस्तु के पकने के लिए एक नियत काल या तापमान की आवश्यकता होती है। फल, अंडे आदि के पकने में एक नियत अवधि की आवश्यकता होती है और दाल, साग, चासनी, ईंट, कांच आदि की भट्टी पकने में अमुक श्रेणी का ताप मान आवश्यक होता है। गायत्री की साधना पकने का माप दंड सवालक्ष जप है। पकी हुई साधना ही मधुर फल देती है।

सब लक्ष जप का अनुष्ठान।

सपाद लक्ष मंत्राणां गायत्र्या जपनं तुवे।
ध्यानेन विधिना चैवानुष्ठानं हि प्रचक्षते॥

(ध्यानेन) ध्यान से (चैव) और (विधिना) विधि पूर्वक (गायत्र्याः) गायत्री के (सपादलक्ष मंत्राणां) सवा लाख मंत्रों का (जपनं) जाप करना (हि) निश्चय से (अनुष्ठानं) अनुष्ठान (प्रचक्षते) कहा जाता है।

सवालक्ष मंत्रों के जप को अनुष्ठान कहते हैं। यह अनुष्ठान विधिपूर्वक किया जाना चाहिए। क्योंकि विधि पूर्वक किया हुआ कार्य ही भली प्रकार सफल होता है। यह अनुष्ठान ध्यान के साथ होना चाहिए। जपकाल में गायत्री माता का ध्यान बराबर बना रहे। केवल स्थूल शरीर से नियत उपक्रम को मंत्र चालित पुर्जे की तरह पूरा कर देना ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए शारीरिक और मानसिक दोनों क्रियाओं का संयोग होना चाहिए। मन की क्रिया ध्यान है, जपकाल में गायत्री का ध्यान किस प्रकार करना चाहिए इसका वर्णन अन्यत्र किया गया है। अब बाह्य क्रियाऐं किस प्रकार होनी चाहिए इसका वर्णन करते हैं—

पंचम्यां पूर्णिमायांवा चैकादश्यां तथैवहि।
अनुष्टानस्य कर्तव्य आरम्भः फल प्राप्तये॥

(पंचम्यां) पंचमी (पूर्णिमायां) पूर्णमासी (वा तथैव) अथवा उसी प्रकार से (एकादश्यां) एकादशी के दिन (फल प्राप्तये) फल प्राप्ति के लिए (अनुष्ठान स्य) अनुष्ठान का (आरम्भः) आरम्भ करना चाहिए।

सूर्य चन्द्र और पृथ्वी के प्रभावों की न्यूनाधिकता होते रहने के कारण उनका मिश्रित प्रभाव भी भूलोक पर प्रतिदिन बदलता रहता है। अमावस्या और पूर्णमासी के दिन समुद्र में ज्वार भाटा आना इस प्रभाव का प्रत्यक्ष चिन्ह है। अप्रत्यक्ष और सूक्ष्म प्रभाव भी इसी प्रकार होते हैं और उनका क्रम प्रतिदिन बदलता रहता है। यह महा विज्ञान इन थोड़ी पंक्तियों में सविस्तार नहीं बताया जासकता पर यहां इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि सूक्ष्म विज्ञान के आचार्यों ने उन ग्रहों की शक्तियों का किस दिन क्या प्रभाव पड़ता है इस विज्ञान के आधार पर तिथियों को शुभा शुभ निर्धारित किया है। कोई तिथि एक कार्य के लिए शुभ है तो दूसरे के लिए अशुभ हो सकती है। गायत्री अनुष्ठान आरंभ करने के लिए पंचमी पूर्णमासी, एकादशी यह तीन तिथियां शुभ मानी गई हैं। पंचमी को दुर्गा, पूर्णमासी को लक्ष्मी और एकादशी को सरस्वती तत्वों की प्रधानता रहती है। मास के शुक्ल पक्ष और कृष्णपक्ष दोनों ही इस कार्य के लिए ठीक हैं, किसी का निषेध नहीं है पर कृष्ण पक्ष की अपेक्षा शुक्ल पक्ष अधिक शुभ है।

पुष्पाण्युच्चैरवस्थाप्य प्रेम्णा शोभन आसने।
गायत्र्यास्तेषु कर्तव्या सत्प्रतिष्ठा तु वाग्मिभिः॥

(पुष्पाणि) फूलों को (प्रेम्णा) प्रेम से (शोभने) सुन्दर और (उच्चैः) ऊंचे (आसने) आसन पर (अवस्थाप्य) स्थापना करके (वाग्मिभिः) विवेकवानों को (तेषु) उन फूलों के ऊपर (गायत्र्याः) गायत्री की [सत्प्रतिष्ठा कर्तव्या] सत् प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

अनुष्ठान आरंभ करते हुए नित्य गायत्री की प्रतिष्ठा और अन्त करते हुए नित्य विसर्जन करना चाहिए। इस प्रतिष्ठा में भावना और निवेदन प्रधान है। श्रद्धापूर्वक 'भगवती, जगज्जननी भक्त वत्सला गायत्री यहाँ प्रतिष्ठित होने का अनुग्रह कीजिए' ऐसी प्रार्थना संस्कृत या मातृभाषा में करनी चाहिए और विश्वास करना चाहिए प्रार्थना को स्वीकार करके वे कृपा पूर्वक पधार गई हैं। विसर्जन करते समय प्रार्थना करनी चाहिए कि "आदि शक्ति, भय

हारिणी, मुक्तिदायिनी, तरल तारिणी मातृके! अब अब विसर्जित हूजिए' इस भावना को संस्कृत या अपनी मातृभाषा में कह सकते हैं। इस प्रार्थना के साथ साथ यह विश्वास करना चाहिए कि प्रार्थना स्वीकृत करके वे विसर्जित होगई हैं।

किसी छोटी चौकी, चबूतरी या आसन पर फूलों का एक छोटा सुन्दर सा आसन बनाना चाहिए और उस पर गायत्री की प्रतिष्ठा होने की भावना करनी चाहिए। साकार उपासना के समर्थक भगवती का कोई सुन्दर सा चित्र अथवा प्रतिमा को उन फूलों पर स्थापित कर सकते हैं, निराकार के उपासक निराकार भगवती की शक्ति पुञ्ज का एक स्फुल्लिग वहां प्रतिष्ठित होने की भावना कर सकते हैं। कोई कोई साधक धूपबत्ती की दीपक की अग्नि शिखा में भगवती की चैतन्य ज्वाला का दर्शन करते हैं और उस दीपक या धूपबत्ती को फूलों पर प्रतिष्ठित करके अपनी आराध्य शक्ति की उपस्थिति अनुभव करते हैं। विसर्जन के समय प्रतिमा को हटा कर शयन करा देना चाहिए, पुष्पों को जलाशय या पवित्र स्थान में विसर्जित कर देना चाहिए। अधजली धूपबत्ती या रुई की बत्ती को बुझाकर उसे भी पुष्पों के साथ विसर्जित कर देना चाहिए। दूसरे दिन जली हुई बत्ती का प्रयोग फिर न होना चाहिए।

तद्विधाय ततोदीप धूप नैवेद्यचन्दनैः।
नमस्कृत्याक्षतेनापि तस्याः पूजन माचरेत्॥

(तद्विधाय) उस प्रकार से गायत्री की प्रतिष्ठा करके (ततः) तदनन्तर (नमस्कृत्य) उसे नमस्कार करके (धूप दीप नैवेद्य चन्दनैः) दीपक, धूप, नैवेद्य और चन्दन (अक्षते नापि) तथा अक्षत इन सबसे (तस्याः) गायत्री का (पूजनं) पूजन (आचरेत) करे।

गायत्री पूजन के लिए पांच वस्तुएं प्रधान रूप से मांगलिक मानी गई हैं। इन पूजा पदार्थों में वह प्राण है जो गायत्री के अनुकूल पड़ता है। इसलिए पुष्प आसन पर प्रतिष्ठित गायत्री के संमुख धूप जलाना, दीपक स्थापित रखना, नैवेद्य चढ़ाना, चन्दन लगाना तथा अक्षतों की वृष्टि करनी चाहिए। अगर दीपक या धूप को गायत्री की स्थापना में रखा गया है तो उसके स्थान पर जल का अर्ध देकर पांचवें पूजा पदार्थ की पूर्ति करनी चाहिए।

पूर्ववर्णित विधि से प्रातःकाल पूर्वाभिमुख होकर शुद्ध भूमि पर शुद्ध होकर कुशासन पर बैठे। जल का पात्र समीप रखले। धूप और दीपक जप के समय जलते रहने चाहिए। बुझ जांय तो उस बत्ती को हटाकर नई बत्ती डालकर पुनः जलाना चाहिए। दीपक या उसमें पड़े हुए घृत को हटाने की आवश्यकता नहीं है।

पूजनानन्तरं विज्ञः भक्त्या तज्जपमारभेत्।
जपकाले तु मनः कार्यं श्रद्धान्वितमचञ्चलम्॥

(विज्ञः) विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह (पूजनानन्तरं) पूजा के अनन्तर (भक्त्या) भक्ति से (तज्जपं) उस गायत्री का 'जपं) जप (आरभेत्) आरंभ करे। (जप काले) जप के समय (मनः) मन को (श्रद्धान्वितं) श्रद्धा से युक्त (अचञ्चलं, स्थिर (कार्यं) कर लेना चाहिए।

पुष्प आसन पर गायत्री की प्रतिष्ठा और पूजा के अनन्तर जप प्रारंभ कर देना चाहिए। नित्य यही क्रम रहे। प्रतिष्ठा और पूजा अनुष्ठान काल में नित्य होते रहने चाहिए। जप के समय मन को श्रद्धान्वित रखना चाहिए, स्थिर बनना चाहिए। मन चारों ओर न दौड़े इसलिए पूर्व वर्णित ध्यान भावना के अनुसार गायत्री का ध्यान करते हुए जप करना चाहिए। साधना के इस आवश्यक अंग—ध्यान में—मन लगा देने से वह एक कार्य में उलझा रहता है और जगह २ नहीं भागता! भागे तो उसे रोक रोक कर बार बार ध्यान भावना पर लगाना चाहिए। इस विधि से एकाग्रता की दिन दिन वृद्धि होती चलती है।

मासद्वयेऽविरामं तु चत्वारिंशद्दिनेषुवा ।
पूरयेत्तदनुष्ठानं तुल्य संख्यासुवै जपन् ॥

(मास द्वये) दो महीने में (वा) अथवा (चत्वारिंशद्दिनेषु) चालीस दिनों में (अविरामं तु) बिना नागा किये (वै) तथा (तुल्य संख्यासु) बराबर संख्याओं में (जपन्) जपता हुआ (तदनुष्ठानं) उस अनुष्ठान को (पूरयेत्) पूर्ण करे।

सवालक्ष जप को चालीस दिन में पूरा करने का क्रम पूर्वकाल से चला आता है। पर निर्बल अथवा कम समय तक साधना कर सकने वाले साधक उसे दो मास में भी समाप्त कर सकते हैं। प्रति दिन जप को संख्या बराबर होनी चाहिये, किसी दिन ज्यादा किसी दिन कम ऐसा क्रम ठीक नहीं। यदि चालीस दिन में अनुष्ठान पूरा करना हो तो १२५००० ÷ ४० = ३१२५ मंत्र नित्य जपने चाहिए। माला में १०८ दाने होते हैं, इतने मंत्रों की ३१२५ ÷ १०८ = २९ इस प्रकार उन्तीस मालाएं नित्य जपनी चाहिए। यदि दो मास में जप करना हो तो १२५००० ÷ ६० = २०८४ मंत्र प्रतिदिन जपने चाहिए। इन मंत्रों की मालाऐं २०८४ ÷ १०८=२० मालाऐं प्रतिदिन जपीजानी चाहिए। माला की गिनती याद रखने के लिए खाड़िया मिट्टी को गंगाजल में सान कर छोटी छोटी गोली बना लेना चाहिए और एक माला जपने पर एक गोली एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख देनी चाहिए,इस प्रकार जब सब गोलियां इधर से उधर हो जांय तो जप समाप्त कर देना चाहिए। इस क्रम से जप संख्या में भूल नहीं पड़ती।

अनुष्ठानावसाने तु अग्नि होत्रो विधीयताम्।
यथाशक्ति ततोदानं ब्रह्म भोजस्त्वनन्तरम् ॥

(अनुष्ठानावसाने तु) अनुष्ठान के अन्त में (अग्निहोत्रः) हवन (विधीयतां) करना चाहिए (ततः) तदनन्तर (यथाशक्ति) शक्ति के अनुसार (दानं) दान और बृह्मभोज करना चाहिए।

दान में विवेक की आवश्यकता को अनुभव करते हुए ऐसे पात्रों को—ऐसे कार्यों के लिए दान देना चाहिए जिनसे लोक कल्याण होता हो, संसार में सतोगुण की वृद्धि होती हो। सत कार्यों में वृद्धि के लिए और दुखियों के दुख निवारण के लिए दिया हुआ दान ही सात्विक और शुभ परिणाम उत्पन्न करने वाला होता है। इसी प्रकार ब्रह्मभोज उन्हीं ब्राह्मणों को कराना चाहिए जो वास्तव में ब्राह्मण है, वास्तव में ब्रह्म परायण हैं। कुपात्रों को दिया हुआ दान और कराया हुआ भोजन निष्फल जाता है। इसलिए निकटस्थ या दूरस्थ सच्चे ब्राह्मणों को ही भोजन कराना चाहिए। हवन की विधि अगले लेख में लिखते हैं—

गायत्री आह्वान का मंत्र—

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्म वादिनी।
गायत्री च्छन्दसां माता ब्रह्मयोने नमोस्तुते।

गायत्री विसर्जन का मंत्र—

उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योह्यनुज्ञानं गच्छदेवि यथासुखम् ॥

सर्व शुभ गायत्री यज्ञ।

अग्नि होत्रं तु गायत्री मंत्रेण विधिवत् कृतम्।
सर्वेष्वेव सरेष्वेव शुभमेव मते बुधैः।

(गायत्री मंत्रेण) गायत्री मंत्रसे (विधिवत्) विधिपूर्वक (कृतं) किया गया (अग्निहोत्रं) अग्निहोत्र (सर्वेषु) सभी (अवसरेषु) अवसरों पर (बुधैः) विद्वानों ने (शुभं मतं) शुभ माना है।

गायत्री मंत्र से किया हुआ अग्निहोत्र सब अवसरों पर शुभ है। भारतीय धर्म में प्रत्येक शुभ कार्य के साथ यज्ञ को संबंधित किया गया

है, कारण यह है कि शुभ कार्य वही होसकता है जिसके साथ यज्ञ भावनाएं संमिश्रित हों। यज्ञ कहते हैं—त्याग को। लोक हित के लिए, जनता जनार्दन की सेवा के लिए, परमार्थ के लिए,अपने भौतिक स्वार्थों का, पदार्थों का त्याग करना यज्ञ कहलोता है। अग्नि होत्र उस भावना का एक प्रतीक है।

समिधा कहते हैं—बल को। हवन में ढाक, छोंकर, आम, पीपल, गूलर अपामार्ग, आक की समिधायें प्रधानतः काम आती हैं। यह समिधायें शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक बल की प्रतीक हैं। जब मनुष्य के अन्दर सुदृढ़ बल होते हैं। सूखी समिधायें होती हैं,तब उनमें अग्नि का, ब्रह्म का तेज प्रकट होता है। जब समिधाओं में अग्नि प्रज्वलित होगई, तब हवन सामिग्री की हव्य की आवश्यकता होती है, आध्यात्मिक भाषा में हव्य कहते हैं सत् प्रवृत्तियों को। श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभावों का शाकल्य इस अग्नि में होमा जाता है। बल सम्पादन करके, उस बल को ब्रह्म तेज से, आध्यात्मिकता से, समन्वित करके उसमें सत् वृत्तियों का, श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावों का, समन्वय करते हैं इस हव्य समिग्री में एक और वस्तु मिलानी आवश्यक होती है वह है मधु। मधुर खांड़ मिश्री या बूरा मिलाये बिना काम नहीं चल सकता, इसका अर्थ है-मधुरता का मिश्रण। हमारी प्रत्येक वाणी एवं क्रिया मधुर, मीठी, प्रिय, विनय युक्त होनी चाहिए। कोई कितना ही ऊँचा महान् धनी, विद्वान क्यों न हो यदि उसमें मधुरता नहीं तो उसका सारा वैभव निरर्थक है। इस मधुर हव्य के पड़ने से अग्निहोत्र प्रदीप्त होता है उसकी लपटें ऊपर उठती हैं, अर्थात् जीवन को ऊर्ध्व गति की ओर अग्रसर करती हैं। इस हवन में आहुतियों के साथ साथ घृत भी होमा जाता है। घृत का दूसरा नाम है स्नेह। स्नेह अर्थात् प्रेम,आत्मभाव, वात्सल्य। अपने जीवनोद्देश्य से, धर्म से, कर्तव्य से, स्वजन संबंधियों से, प्राणिमात्र से निस्वार्थ सतोगुणी प्रेम होना, दिव्य घृत है,जिससे जीवन यज्ञ की पूर्णता होती है।

अपनी उपार्जित संग्रहीत वस्तुओं को हम हवन करते हैं, किसी प्रत्यक्ष स्वार्थ या लाभ के लिए नहीं—वरन् एक अदृश्य परमार्थ के लिए। दूर दृष्टि से, दिव्य दृष्टि से, त्याग का महत्व समझते हुए यह सब करते हैं। यज्ञ का यही दृष्टिकोण है। आहुति मंत्र के अन्त में स्वाहा कहने के पश्चात् 'इदन्नमम' का उच्चारण होता है। इसका अर्थ है "यह मेरा नहीं है। अर्थात् सब कुछ परमात्मा का है।" इस त्याग भावना से हमारा जीवन ओत प्रोत होना चाहिए, यज्ञ मय जीवन इसी को कहते हैं। इस जीवनोदेश्य का, आत्मिक आदर्श का, भौतिक प्रतीक है—अग्नि होत्र। इसीलिए अग्निहोत्र के साथ किये हुए कार्य शुभ होते हैं।

हवन करने में जिन वस्तुओं की आहुति दी जाती है वे नष्ट नहीं होजातीं वरन् सूक्ष्म होकर अनेक गुनी शक्ति शाली बनती हैं और चारों ओर आकाश में फैल जाती हैं। लाल मिर्च एक स्थान पर रखी रहे तो उसकी शक्ति सीमित है पर यदि उसे अग्नि में जलाया जाय तो वह वह सूक्ष्म होकर दूर दूर तक फैलेगी और लोग अनुभव करेंगे कि उन तक मिर्च जलने की गंध आरही है। इसी प्रकार हवन सामिग्री भी सूक्ष्म होकर आकाश में फैल जाती है उससे आकाश वायु, जल आदि तत्वों की शुद्धि होती है फल स्वरूप स्वास्थ्य कर वातावरण उत्पन्न होता है. नाना प्रकार की बीमारियां जो अदृश्य आकाश में मँडराती रहती हैं, यज्ञ धूम्र से नष्ट होती है और अच्छी वर्षा होती है एवं अच्छे अन्न उत्पन्न होते हैं। यज्ञ की त्याग भावना जो मंत्रों के साथ आकाश में गुंजित की गई है देव तत्वों को उल्लसित एवं प्रस्फुटित करती है वे प्रसन्न होकर, पुष्ट होकर, संसार के लिए सुख शान्ति की प्रेरणा करते हैं। इस प्रकार यज्ञ कल्याण के

लिए बड़ा ही उत्तम मार्ग सिद्ध होता है। इसमें खर्च किया हुआ धन और समय अगणित गुने सत्परिणाम उत्पन्न करता है। इन तत्वों के आधार पर ही हमारे पूजनीय ऋषियों ने प्रत्येक शुभ कार्य के साथ यज्ञ का समावेश किया है। कोई भी संस्कार, व्रत, अनुष्ठान, पूजन, उत्सव ऐसा नहीं है जिसके लिए हवन आवश्यक न हो। नित्य कर्मों में पंचयज्ञों का विधान है। जिसकी चिन्ह पूजा अब भी भोजन बनाते समय स्त्रियां पहली रोटी के पांच ग्रास चूल्हे में डालकर करती हैं।

गायत्री अनुष्ठान के अन्त में या अन्य किसी भी शुभ अवसर पर 'गायत्री यज्ञ' करना चाहिए। जिस प्रकार वेदमाता की सरलता, सौम्यता, वत्सलता, सुसाध्यता प्रसिद्ध है उसी प्रकार गायत्री हवन भी अत्यन्त सुगम है। इसके लिए बड़ी भारी मीन मेख निकालने की या कर्मकाण्डी पण्डितों का ही आश्रय लेने की अनिवार्यता नहीं है। साधारण बुद्धि के साधक इसको स्वयमेव भली प्रकार कर सकते हैं।

कुण्ड खोद कर या वेदी बना कर दोनों ही प्रकार हवन किया जासकता है। निष्काम बुद्धि से आत्म कल्याण किये जाने वाले हवन कुण्ड खोद करना ठीक है और किसी कामना से, मनोरथ की पूर्ति के लिए किये जाने वाले यज्ञ वेदी पर किए जाने चाहिए। कुण्ड या वेदी की लम्बाई चौड़ाई साधक के अंगुलों से चौबीस २ अंगुल होनी चाहिए। कुण्ड खोदा जाय तो उसे चौबीस अंगुल ही गहरा भी खोदना चाहिए और इस प्रकार तिरछा खोदना चाहिए कि नीचे पहुंचते पहुंचते चार अंगुल चौड़ा और चार अंगुल लंबा रह जावे। वेदी बनानी हो तो पीली मिट्टी की चार अंगुल ऊँची वेदी चौबीस २ अंगुल लम्बी चौड़ी बनानी चाहिए। वेदी या कुण्ड को हवन करने से दो घंटे पूर्व, केवल पानी से इस प्रकार लीप देना चाहिए कि वह समतल होजावे ऊँचाई नीचाई अधिक न रहे। कुण्ड या वेदी से चार अंगुल हटकर एक छोटी नाली दो अंगुल चौड़ी दो अंगुल गहरी खोद कर उसमें पानी भर देना चाहिए। वेदी या कुण्ड के आस पास गेहूं का आटा, हल्दी, रोली, आदि मांगलिक द्रव्यों से चौक पूर कर चित्र विचित्र बना कर अपनी कला प्रियता का परिचय देना चाहिए। यज्ञ स्थल को अपनी सुविधानुसार मंडप, पुष्प पल्लव आदि से जितना सुन्दर एवं आकर्षक बनाया जासके उतना अच्छा है।

वेदी या कुण्ड के ईशान कोण में कलश स्थापित करना चाहिए। मिट्टी या उत्तम धातु के बने हुए कलश में पवित्र जल भर कर उसके मुख में आम्र पल्लव रखने चाहिए और ऊपर ढक्कन में चावल, गेहूं का आटा, मिष्ठान्न अथवा कोई अन्य मंगलीक द्रव्य रख देना चाहिए। कलश के चारों ओर हल्दी से स्वस्तिक (सथिया) अंकित कर देना चाहिए। कलश के समीप एक छोटी चौकी या वेदी पर पुष्प और गायत्री की प्रतिमा, पूजन सामिग्री रखनी चाहिए।

वेदी या कुण्ड के तीन ओर आसन बिछा कर इष्ट मित्रों बन्धु बान्धवों सहित बैठना चाहिए। पूर्व दिशा में जिधर कलश और गायत्री स्थापित है उधर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण अथवा अपने वयोवृद्ध को आचार्य वरण करके बिठाना चाहिए। वह इस यज्ञ का ब्रह्मा है। यजमान पहले ब्रह्मा के दाहिने हाथ में सूत्र (कलावा) बांधे, रोली या चंदन से उनका तिलक करे, चरण स्पर्श करे तथा पुष्प, फल, मिष्ठान्न का एक छोटी सी भेंट उनके सामने उपस्थित करे। तदुपरान्त ब्रह्मा उपस्थित सब लोगों को क्रमशः अपने पास बुलाकर उनके दाहिने हाथ में कलावा बांधे, मस्तक पर रोली का तिलक करे और उनके ऊपर अक्षत छिड़क कर आशीर्वाद के मंगल वचन बोले।

यजमान को पश्चिम की ओर बैठना चाहिए उसका मुख पूर्व को रहे। हवन सामिग्री और घृत अधिक हो तो उसे कई पात्रों में विभाजित करने के लिए कई आदमी हवन करने बैठ सकते

हैं। सामिग्री थोड़ी हो तो यजमान हवन सामिग्री अपने पास रखे और उसकी पत्नी घृत पात्र सामने रखकर चम्मच (श्रुवा) सँभाले। पत्नी न हो तो भाई या मित्र घृत पात्र लेकर बैठ सकता है। समिधायें सात प्रकार की होती हैं यह सब प्रकार की न मिल सके तो जितने प्रकार मिल सकें उतने प्रकार की ले लेनी चाहिए। हवन सामिग्री त्रिगुणात्मक साधना लेख में दी हुई है वे तीनों गुण वाली लेनी चाहिए पर आध्यात्मिक हवन हो तो सतोगुणी सामिग्री आधी और चौथाई चौथाई रजोगुणी तमोगुणी लेनी चाहिए। यदि किसी भौतिक कामना के लिए हवन किया गया हो रजोगुणी आधी और सतोगुणी तमोगुणी चौथाई चौथाई लेनी चाहिए। सामिग्री को भले प्रकार साफ कर धूप में सुखा कर जौ कुट कर लेना चाहिए। सामिग्रियों की किसी वस्तु के न मिलने पर या कम मिलने पर उसका भाग उसी गुण वाली दूसरी औषधि को मिला कर किया जासकता है।

उपस्थित लोगों में जो हवन की विधि में सम्मिलित हों वे स्नान किये हुए हों। जो लोग दर्शक हों वे थोड़ा हटकर बैठें। दोनों के बीच में थोड़ा फासला रखना चाहिए।

हवन आरंभ करते हुए यजमान ब्रह्मसंध्या के आरंभ में प्रयोग होने वाले पंच कोषों (आचमन, शिखाबन्ध, प्राणायाम, अघमर्षण तथा न्यास) की क्रियायें करें। तत्पश्चात् वेदी या कुण्ड पर समिधायें चिन कर कपूर की सहायता से गायत्री मंत्र के उच्चारण सहित अग्नि प्रज्वलित करे। सब लोग साथ साथ मंत्र बोलें और अन्त में स्वाहा के साथ घृत तथा सामिग्री वाले उनका हवन करें। आहुति के अन्त में चम्मच में से बचे हुए घृत की एक दो बूंदें पास में हुए पात्र में टपकाते जाना चाहिए और 'आदि शक्ति गायत्र्यै इदन्नमम' का उच्चारण करना चाहिए। हवन में साथ साथ बोलते हुए मधुर स्वर से मंत्रोच्चारण करना तो उत्तम है पर उदात्त अनुदात्त और स्वरित के अनुसार होने न होने की इस सामूहिक सम्मेलन में शास्त्रकारों से छूट दी हुई है।

आहुतियां कम से कम १२५ होनी चाहिए। अधिक इससे दो तीन चार या चाहे जितने गुने किये जासकते हैं। सामिग्री कम से कम प्रति आहुति के लिए तीन मासे के हिसाब से ३२ तोले अर्थात् करीब ६॥ छटांक और घृत एक मासे प्रति आहुति के हिसाब से २॥ छटांक होना चाहिए। सामर्थ्यानुसार इससे अधिक चाहे जितना बढ़ाया जासकता है। ब्रह्मा माला लेकर बैठे और आहुतियां गिनता रहे जब पूरा होजाय तो आहुतियां समाप्त करादे। उस दिन बने हुए पक्वान्न मिष्ठान्न आदि में से अलौने और मधुर पदार्थ लेने चाहिए। नमक मिर्च मिले हुए शाक आचार, रायते आदि का अग्नि में निषेध है। इस भोजन में से थोड़ा थोड़ा भाग लेकर वे सभी लोग चढ़ावें जिन्होंने स्नान किया है और हवन में भाग लिया है। अन्त में एक नरियल की भीतरी गिरी का गोला लेकर उसमें छेद करके यज्ञ शेष घृत भरना चाहिए और खड़े होकर पूर्णाहुति के रूप में उसे अग्नि में समर्पित कर देना चाहिए। यदि कुछ सामिग्री बची हो तो वह भी सब इसी समय चढ़ा देनी चाहिए।

इसके पश्चात् सब लोग खड़े होकर यज्ञ की चार परिक्रमा करें। और 'इदन्नमम' का पानी पर तैरता हुआ घृत उंगली से लेकर पलकों पर लगावें, हवन की बुझी हुई भस्म लेकर सब लोग मस्तक पर लगावें। कीर्तन या भजन गायन करें। और कुछ प्रसाद वितरण करके सब लोग प्रसन्नता और अभिवादन पूर्वक विदा हों। यज्ञ की सामिग्री को दूसरे दिन किसी पवित्र स्थान में विसर्जित करना चाहिए। यह गायत्री यज्ञ, अनुष्ठान के अन्त में ही नहीं, अन्य समस्त शुभ कर्मों में भी किया जा सकता है।

समस्त मंत्रों का लाभ।

एक एव तु संसिद्ध गायत्री मंत्र आदिशेत्।
समस्तलोक मंत्राणां कार्य सिद्धेस्तु पूरकः॥

(संसिद्धः) सिद्ध हुआ (एकः) अकेला (एव) ही (गायत्री मंत्रः) गायत्री मंत्र (समस्त लोक मंत्राणां) संसार के समस्त मंत्रों की (कार्य सिद्धेः) कार्य सिद्धि का (पूरकः) पूरक (आदिशेत्) होता है।

सिद्ध किया हुआ गायत्री मंत्र अकेला ही उन सब शक्तियों से युक्त होता है जो अन्य किसी मंत्र द्वारा प्राप्त होसकती है। ऐसा साधक अकेले अपने इसी मंत्र के ऊपर निर्भर रह सकता है, उसके वे सब प्रयोजन सिद्ध होजाते हैं जो संसार के अन्य किसी मंत्र से सिद्ध होसकते हैं।

मंत्र सिद्धि एक मानसिक पुरुषार्थ है। विश्वास बल की महिमा अपार है। दैनिक जीवन में विश्वास बल के आधार पर लोग बड़े बड़े दुस्साहस पूर्ण कार्य करते हैं, लघु से महान बनते हैं और ऐसे ऐसे कार्य कर दिखाते हैं जिन्हें देख कर हैरत से दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। इस छोटे लेख में ऐसे उदाहरणों का उल्लेख करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इतिहास का पन्ना पन्ना वीर पुरुषों के असाधारण चरित्रों से अंकित है। इनका मूल हेतु उन व्यक्तियों का आत्म विश्वास है। विश्वास की दृढ़ता के कारण मानसिक शक्तियों की गति विधि उसी नियत दिशा में तीव्रता पूर्वक संचालित होती है। शरीर की कार्यक्षमता भी उसी दिशा में परिपक्व होती है। आदत, स्वभाव, रुचि और प्रयत्न इस सबका प्रवाह एक ही दिशा में संलग्न होजाता है फल स्वरूप वह व्यक्ति अपने मार्ग पर तेजी से बढ़ता जाता है। उसका आकर्षण दूसरों को सहयोग देने के लिए खींचता है, परिस्थितियाँ उसके पक्ष में मुड़ जाती हैं, तदनुसार वह बड़े २ महत्वपूर्ण कार्यों को सिद्ध कर लेता है।

व्यक्तिगत जीवन में आत्म विश्वास गजब का काम करता है। रोगी, सनकी, कायर, आलसी, दुराचारी, अभागा, पतित, घृणित, दरिद्री एवं तुच्छ बनने में अपनी मान्यता ही प्रधान है और सर्व साधन सम्पन्न, सद्गुणी एवं उन्नतिशील बनने में भी अपने विश्वास ही काम करते हैं। भूतबाधा, उन्माद, सनक, सरीखे रोगों का अधिकांश आधार रोगी की मान्यता पर स्थिर होता है, उसकी मान्यता बदल जाय तो ऐसे रोगी चुटकियों में चंगे होजाते हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में तो सर्वप्रधान तत्व विश्वास ही है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रद्धा और विश्वास को भवानी शंकर की उपमा देते हुए उनकी वंदना की है। हम अपनी—मरने के बाद क्या होता है? पुस्तक में सविस्तार बता चुके हैं कि स्वर्ग, नरक और पुनर्जन्म किस प्रकार अपने सुनिश्चित विश्वासों के आधार पर प्राप्त होता है। जिन विचार और विश्वासों के क्षेत्र में मनुष्य जीवन भर भ्रमण करता है वे अन्तर्मन में, सूक्ष्म शरीर में, संस्कार बनकर स्थिर होजाते हैं। मरने के बाद सोचने और तर्क करने वाला बाह्य मन एवं मस्तिष्क तो समाप्त होजाता है और सारी क्रियापद्धति उन अन्तर्मन के संस्कारों द्वारा चलती है। जैसे भौंरा फूलों को और मक्खी विष्ठा को अपने स्वभाव के अनुसार कहीं से न कहीं से ढूँढ़ लेते हैं वैसे ही संस्कारों की प्रेरणा से अपने रुचिकर वातावरण में जीव चला जाता है और वहां पुनर्जन्म धारण कर लेता है। इसी प्रकार मृत्यु और पुनर्जन्म से बीच के समय में जीव निद्रा ग्रस्त रहता है और चित्त में जमे हुए संस्कारों के अनुसार स्वप्न लेता रहता है। कुसंस्कारों से उत्पन्न हुए दुःस्वप्न उसे भयंकर नरक की यातनाओं का अनुभव कराते हैं और सुसंस्कारों की दिव्य मनोभूमि ऐसे आनंद मय

स्वप्नों का सृजन करती है जिसे स्वर्ग विचरण कह सकते हैं। यह उभय पक्षीय स्थितियां अपने विश्वासों के आधार पर ही प्राप्त होती रहती हैं।

विश्वास से देवता बनते हैं और साधक के लिए दिव्य वरदान उपस्थित करते हैं। योग साधन विश्वास का निर्माण मात्र है। मन को वश में करने चित्त वृत्तियों का निरोध करने, मनोवृत्तियों को चाहे जिस दिशा में लगाने की सफलता प्राप्त करने, स्वसंमोहन में सिद्ध हस्त होने के लिए ही योग साधन की समस्त प्रणाली एवं प्रक्रियाएं बनाई गई हैं। मैस्मरेज़म से लेकर समाधि तक जितनी भी योग साधनाएं हैं वे सब विश्वास बल के चमत्कार मात्र हैं। परमात्मा की प्राप्ति, आत्म दर्शन, ब्रह्मनिर्वाण, जीवन मुक्ति और परमानन्द को उपलब्ध करने के लिए एक मात्र अवलम्बन विश्वास ही है यदि यह पतवार हाथ से छूट जाय तो साधक का किसी भी निश्चित केन्द्र विन्दु पर पहुंचना कठिन ही नहीं असंभव भी है।

हर दिशा में विश्वास बल की प्रधानता है। यही प्रधान तत्व मंत्र बल की सफलता का मूल हेतु है। मंत्रों की साधनाएं, विधियां बड़ी कठोर होती हैं, उनके सिद्ध करने में साधक को अपने पुरुषार्थ का परिचय देना होता है। यह विधियाँ गुप्त रखी जाती हैं, और गुरु उन्हें अपने शिष्य को गुप्त रखने की प्रतिज्ञा के साथ बताते हैं। इस प्रकार की गोपनीयता, मंत्र की महापुरुषार्थ पूर्ण कठोर साधना के आधार पर साधक की मनोभूमि का ऐसा निर्माण किया जाता है कि वह मंत्र शक्ति के ऊपर अटूट विश्वास करले। यह विश्वास जितना ही गहरा सुदृढ़ एवं संदेह रहित होता है, जितना ही उस पर श्रद्धा का पुट चढ़ा होता है उसी अनुपात से मंत्र की सिद्धि मिलती है और उस सिद्धि के चमत्कार दृष्टि गोचर होते हैं।

मंत्र अनेकों हैं। उनकी साधना विधियां भी अनेक हैं, उनके फल भी पृथक पृथक हैं, उनकी शक्तियों में भिन्नता है। इतना सब होते हुए भी उन सबका मूल तत्व एक ही है। एक ही मिट्टी से कुम्हार विविध प्रकार के खिलौने और बर्तन बना देता है। एक ही धातु से अनेक प्रकार के शस्त्र, पात्र, आभूषण एवं पदार्थ बनते हैं उनमें भिन्नता रहते हुए भी मूल में एक ही चीज है। इसी प्रकार मंत्र बहुत से हैं, पर उनका आधार एक मात्र विश्वास ही है। साधकों की संतुष्टि और श्रद्धा की पुष्टि के लिए, अनेक गुरुपरम्पराओं से अनेक प्रयोजनों के लिए अनेक मंत्र प्रचलित हैं पर तात्विक दृष्टि से विवेचन किया जाय तो स्पष्ट होजाता है कि इस पृथकता का एकीकरण भी किया जासकता है। अनेक मंत्रों का कार्य एक मंत्र से भी पूरा होसकता है। यदि यह एकीकरण करके—अनेकता के झंझट से बचकर एक से ही अनेक लाभ उठाने अभीष्ट हों तो इस कार्य के लिए गायत्री मंत्र से बढ़ कर और कोई मंत्र नहीं हो सकता।

गायत्री की सिद्धि तब होती है जब उसकी भावना से अन्तः प्रदेश भली प्रकार आच्छादित होजाता है। इसके लिए कितना श्रम, समय और विश्वास चाहिए इसका कोई निश्चित माप नहीं है। क्योंकि जिनकी मनोभूमि उर्वर है, पूर्व निर्मित है, वे थोड़े प्रयत्न से सफलता प्राप्त कर सकते हैं किन्तु जिनका मनः प्रदेश कठोर है उनको सफलता तक पहुंचने के लिए अधिक श्रम, प्रयत्न और धैर्य की आवश्यकता होती है। तो भी एक स्थूल अनुमान इसके लिए निर्धारित किया हुआ है। जिन आधारों पर सिद्धि का अनुमान लगाया जाता है वे यह हैं—(१) लगातार बारह वर्ष तक कम से कम एक माला का जप किया हो (२) गायत्री की ब्रह्म संध्या को लगातार नौ वर्ष किया हो (३) ब्रह्मचर्य पूर्वक पांच वर्ष तक एक हजार मंत्र नित्य जपे हों (४) चौबीस लक्ष गायत्री का अनुष्ठान किया हो (५) एक वर्ष तक गायत्री तप किया हो। इन पांच साधनों से गायत्री सिद्ध होजाती है।

इस सिद्धि से साधक वे सब प्रयोजन पूरे कर सकता है जो किन्हीं अन्य मंत्रों से होते हैं। यद्यपि मंत्र एक ही है पर उसका विविधि प्रकार प्रयोग करने से अनेक प्रकार के उपचार किये जा सकते हैं—

भिन्नाभिर्विधिभिर्बुद्ध्या भिन्नास्तु कार्यपंक्तिषु।
गायत्र्या सिद्ध मंत्रस्य प्रयोगःक्रियते बुधा।

(बुधा) बुद्धिमान पुरुष (भिन्ना सु) भिन्न२ (कार्य पंक्तिषु) कार्यों में (गायत्र्याः सिद्ध मंत्रस्य) गायत्री के सिद्ध हुए मंत्र का (प्रयोगः) प्रयोग (भिन्नाभिः) भिन्न भिन्न (विधिभिः) रीतियों से (बुद्ध्या) बुद्धि द्वारा (क्रियते) करता है।

सिद्ध होने पर किस कार्य के लिए किस प्रकार इस मंत्र शक्ति का प्रयोग किया जाय, इसके लिए उपचार विधि को स्थानीय प्रचलित परम्पराओं के आधार पर बनाना चाहिए, जिससे रोगी को दूसरों द्वारा प्रयोग की जाने वाली प्रणाली का स्मरण हो आवे और उसे अनुमान हो कि इसी उपचार विधि से अमुक से समय इसी प्रकार का रोग अच्छा किया गया था, उसी विधि का उसी मंत्र का मेरे ऊपर प्रयोग होरहा है, इसलिए मैं भी चंगा होजाऊंगा। आमतौर पर मंत्रों का उपचार इन विधियों के साथ होता है—(१) शुद्ध जल को हाथ में लेकर उसके समीप मंत्र पढ़ने से जल अभिमंत्रित हो जाता है, इस जले को पीड़ित को पिलाया जाता है या उसके ऊपर छिड़का जाता है (२) शुद्ध भस्म को बांए हाथ की हथेली पर रखकर दाहिने हाथ की उंगलियों से उसे स्पर्श करते हुए मंत्र पढ़ने से वह भस्म अभिमंत्रित होजाती है और उसे रोगी के मस्तक या अन्य अंगों पर लगाया जाता है तथा थोड़ा सा चटाया आता है (३) नीम की टहनी, मोरपंखों की गट्ठी या बिना प्रयोग की हुई सींकों की झाड़ू से झाड़ते हैं (४) पीली सरसों अभिमंत्रित करके किसी स्थान पर फैला देते हैं (५) मंत्र को भोजपत्र या शुद्ध कागज पर अनार की कलम और केशर की स्याही से लिखकर ताबीज में बंद करके धारण करादेते हैं। (६) कांसे की थाली में खड़िया मिट्टी से चक्रव्यूह आकार में मंत्र लिखकर रोगी को दिखाते हैं और उसे शुद्ध जल में धोकर पिला देते हैं (७) कालीमिर्चें अभिमंत्रित करके उसे रोगी को सेवन कराते हैं। इस प्रकार के और भी अनेकों प्रकार के उपचार होसकते हैं। प्रयोग कर्ता जिस कार्य के लिए जहां मंत्र बल का प्रयोग करे, वहां की स्थिति के अनुसार उपचार विधि निर्धारित करना उसके चातुर्य और बुद्धि कौशल पर निर्भर है। मंत्र बल शक्ति है और उपचार उसका श्रृंगार। श्रृंगार का संबंध परिस्थितियों से होता है इसलिए उसका निर्णय करना बहुत अंशों में प्रयोग कर्ता के ऊपर होता है।

इस प्रकार के उपचारों में प्रयोग कर्ता की आत्म शक्ति का एक अंश उस व्यक्ति के पास पहुंचता है जिस पर प्रयोग किया गया है। इस नये प्राण को पाकर उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति को एक नयी सहायता मिलनी है जिसके बल पर उसकी चेतना पुनः जाग्रत होकर कठिनाई को पार करने में सक्षम होजाती है। जिस प्रकार आपत्तिग्रस्त व्यक्ति को धन, बुद्धि, वस्तु या शारीरिक बल का सहारा देकर उसकी कठिनाइयों को हल कराया जाता है वैसे ही सफल साधक, मंत्र शक्ति द्वारा अपने आत्मबल को दूसरों की सहायता में प्रयोजित करता है फलस्वरूप दूसरा व्यक्ति लाभान्वित होता है।

ऐसे प्रयोग करने में स्वभावतः प्रयोग कर्ता की शक्तियां खर्च होती हैं। ऐसा खर्च तभी करना चाहिए जब अन्य साधारण उपचारों से काम न चलता हो। जिस फोड़े को दो आने की मरहम से अच्छा किया जासकता है, उसे अच्छा करने लिए मूल्यवान् आत्मिक तत्वों का व्यय करना उचित नहीं। कौतुक वश, लोगों में अपनी विशेषता प्रदर्शित करने के लिए या साधारण बात से भावुक बनकर यह शक्तियां खर्च न की जानी चाहिए।

गायत्री की त्रिविधि साधना।

सेव्याआत्मोन्नतेरर्थं पदार्थास्तु सतोगुणाः।
राजसाश्च प्रयोक्तव्याः मनोवाञ्छाभि पूर्तये॥

(आत्मोन्नतेरर्थं) आत्मा की उन्नति के लिए (सतोगुणाः) सतोगुणी (पदार्थाः) पदार्थों का (सेव्याः) सेवन करना चाहिए (च) और (मनोवांछाभि पूर्तये) मनोभिलाषाओं की पूर्ति के लिए (राजसाः) रजोगुणी पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

प्रादुर्भावस्तु भावानां तामसानां विजायते।
तमोगुणानामर्थानां सेवनादिति निश्चयः॥

(तमोगुणानां) तमोगुणी (पदार्थानां) पदार्थों के (सेवनात्) सेवन करने से (तु) तो (तामसानां भावानां) तमोगुणी भावों की (प्रादुर्भावः) उत्पत्ति (विजायते) होती है। (इति) यह (निश्चयः) निश्चय है।

मालासनं समिद्यज्ञसामिग्रयर्चन संग्रहः।
गुणत्रयानुसारं हि सर्वे वै ददते फलम्॥

(माला) माला (आसनं) आसन (यज्ञ सामिग्री) हवन सामिग्री (अर्चन संग्रहः) पूजा के पदार्थ (सर्वे) ये सब (हि) निश्चय से (गुणत्रयानुसार) तीनों गुणों के अनुसार ही (फलं) फल को (वैददते) देते हैं।

पिछले पृष्ठों पर पाठक पढ़ चुके हैं कि गायत्री के तीन रूप हैं। ह्रीं, श्रीं, क्लीं—सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा—सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी यह तीनों ही रूप अपने अपने स्थान पर एक समान उपयोगी हैं। एक ही मनुष्य समय समय पर विविधि प्रकार के पार्ट अदा करता है। पिता के सामने पुत्र जैसा, गुरु के सामने शिष्य जैसा, पत्नी के सामने पति जैसा, सन्तान के सामने पिता जैसा, नौकरों के सामने मालिक जैसा, ईश्वर के सामने भक्त जैसा, दुष्टों के साथ में कसाई जैसा आचरण करता है। इतने घोर अन्तर भरे हुए अभिनय करने पर भी उसकी मूल स्थिति में न तो भिन्नता होती है और न अन्तर आता है। इसी प्रकार आद्यशक्ति गायत्री भी विविधि प्रयोजनों के लिए विविधि रूपों में प्रकट होती है।

एक ही नारी को विधिधि प्रयोजन वाले व्यक्ति विविधि रूपों से देखते हैं। पिता उसे वात्सल्य की प्रतिमा समझ कर उस पर अपना दुलार दुलकाता है और उससे वैसी ही इच्छा तथा आशा रखता है जैसी कि एक पुत्री से रखनी चाहिए। उसी नारी का पति उसे भिन्न दृष्टि से देखता है, उसे रति सी सुन्दरी कामक्रीड़ा की पुतली तथा अर्धांगिनी, जीवन संगिनी समझता है, उसके समक्ष इन्हीं भावनाओं से संमिश्रित व्यवहार करता है और इन भावनाओं के अनुरूप ही पत्नी का आचरण, प्रत्युत्तर प्राप्त होने की आशा करता है। अब उसी नारी के पुत्र का नम्बर आता है, वह शिशु उसे स्नेहमयी, दयामयी, परोपकार की मूर्ति, सुरगौ सी मनोरथ दायिनी अन्नपूर्णा समझता है. वैसा ही उससे व्यवहार करता है वैसी ही मांगें पेश करता है और वैसे ही फल प्राप्त करता है।

एक ही नारी के प्रति रखे जाने वाले इन तीन दृष्टि कोणों की तुलना कीजिए, यह तीनों ही एक दूसरे से बिलकुल नहीं मिलते, तीनों में जमीन आसमान का अन्तर है, पुत्र जिस रूप में उस नारी को देखता है उस दृष्टिकोण से पति देखना कदापि पसन्द न करेगा और जो पति की दृष्टि है वह पिता के लिए सर्वथा अग्राह्य है। इतना अन्तर होते हुए भी एक ही नारी विविधि अवसरों पर विविधि पात्रों के सामने, इन जमीन आसमान जैसे अन्तरों वाले दृष्टिकोणों का अभिनय करती है। इतनी भिन्नतायें धारण

करने पर भी उसका मूल स्वरूप एकरस ही रहता है।

गायत्री माता के तीन स्वरूपों का रहस्य भी यही है। वे हंसारूढ़ सरस्वती का सतोगुणी रूप धारण करके ज्ञान और विवेक की मधुर वीणा, भक्त के हृदयाकाश में झंकृत करती हैं। वे रजोगुणी रूप धारण करके गज वाहिनी लक्ष्मी बनती हैं और भक्त के अभाव को समृद्धियों की सम्पदा से पूरा कर देती हैं। वे तमोगुणी रूप में सिंहारुढ़ दुर्गा बनकर आती हैं और शत्रुओं के मस्तक का अपने खड्ग से छेदन करती हुई, उनके रक्त से खप्पर भरती हैं, मुण्डों की माला गले में डालती हैं। हमें विविधि अवसरों पर विविधि प्रयोजनों के लिए आद्यशक्ति के इन तीनों ही रूपों की आवश्यकता पड़ती है।

आत्मोन्नति के लिए—ज्ञान, विवेक, भक्ति, परमार्थ, का लाभ करना प्रधान उद्देश्य हो तो भगवती के सतोगणी रूप की उपासना करनी चाहिए। किसी सांसारिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए, धन, वैभव, पद, स्वास्थ्य यश तथा अभीष्ट परिस्थिति प्राप्त करने के लिए गायत्री का रजोगुणी रूप उपासनीय है। किन्हीं अनिष्टों का विदारण, आपत्तियों, विघ्नों संकटों भीतरी और बाहरी शत्रुओं का विनाश करने के लिए तमोगुण स्वरूपा शक्ति उपासना की जाती है।

'तमोगुण' शब्द साधारणतः क्रोधके निन्दास्पद अर्थ में प्रयोग किया जाता है, पर यह अर्थ बहुत ही सीमित, संकीर्ण और अधूरा है। तमोगुण का अर्थ यहां 'विरोध' अधिक उपयुक्त होगा। अनुपयुक्त स्थिति को हटाने के लिए जो विरोध उत्पन्न होता है उसके साथ संहारक क्रिया जुड़ी हुई होती है। पर संहारक क्रिया भी उतनी ही आवश्यक होती है, जितनी कि रचनात्मक। रोग कीटाणुओं को मारने के लिए औषधि ली जाती है, यज्ञ द्वारा आकाश स्थिति हानिकारक कीटाणुओं का संहार किया जाता है, शरीर, वस्त्र, गृह, पात्र आदि की शुद्धि करने में अशुद्धि का नाश होता है, मनमें छिपे हुए काम क्रोध, लोभ, मोह आदि को मार डालने, इन्द्रियों को पछाड़ने मन को काबू में करने की संहारक क्रियाऐं योगी जनों के लिए भी आवश्यक समझी जाती हैं। भगवान राम, कृष्ण, परशुराम, नृसिंह आदि अधिकांश अवतारों ने संहारिणी नीति को भी प्रधान रूप से चरितार्थ किया है। इसलिए संहारिणी या विरोधमयी, तमोगुण शक्ति की वृद्धि को बुरा नहीं कहा जा सकता वरन् अनेक अवसरों पर तो वह अत्यन्त आवश्यक होती है। तमोगुण का—विरोध तत्व का—बढ़ना कोई बुरीबात नहीं है, बुराई तो तब है जब उसका दुरुपयोग किया जाता है।

कोई कार्य किसी प्रयोजन के लिए ही किया जाता है। गायत्री से हमारे तीन प्रयोजन सिद्ध होसकते हैं। उसके जिस रूप की हम उपासना करते हैं वही तत्व हमारे अन्दर बढ़ता है, इस वृद्धि के फलस्वरूप साधक को ऐसे ज्ञात और अज्ञात प्रत्यक्ष और परोक्ष अवसर प्राप्त होते हैं जिनका सदुपयोग करने से अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति होती है।

भूगर्भ विद्या के ज्ञाता जानते हैं कि पृथ्वी में अनेक धातुओं के परमाणु बिखरे होते हैं, इन सब परमाणुओं में एक चुम्बकत्व होता है जिसके द्वारा वह परमाणु अपनी जाति के दूसरे परमाणुओं को अपनी ओर खींचता है या उनकी ओर खिंचता है। इस आधार पर एक जाति के परमाणु दूर दूर से खिंचते हुए एक स्थान पर जमा होते जाते हैं और कालान्तर में बड़ी बड़ी खानें बन जाती हैं। खानों की खोज करने वाले विज्ञान वेत्ता अपने अणुवीक्षण यंत्रों से पृथ्वी की विभिन्न सतहों पर यह निरीक्षण करते हैं कि किस जाति के परमाणु, किस गति से, किस दिशा में, चल रहे हैं वे उसी आधार पर अपना अनुसंधान जारी रखते हैं और अन्त में बड़ी बड़ी खानों का पता लगा लेते हैं। हमारे भीतर भी यही परमाणुओं के चुम्बकत्व का सिद्धान्त काम करता है।

जिस प्रकार की साधना हम करते हैं उसी प्रकार का चुम्बकत्व हमारे जड़ और चैतन्य परमाणुओं में बढ़ता है फल स्वरूप संसार में से उसी प्रकार के तत्व खिंचकर हमारे पास जमा होते हैं और थोड़े ही दिनों में उसी प्रकार की एक बड़ी खान हमारे पास जमा हो जाती है। इस खान को स्थूल दृष्टि वाले लोग साधना की सिद्धि कहकर पुकारते हैं। जिस प्रकार की आन्तरिक शक्तियां हमारे अन्दर बढ़ती हैं उस प्रकार की वाह्य सफलतायें पग पग पर मिलना बिलकुल स्वाभाविक है। इस स्वाभाविकता को ही लोग मंत्र बल की अद्भुत शक्ति समझते हैं। देखने में यह सब अद्भुत सा भले ही लगे पर वस्तुतः इसमें असाधारण कोई बात नहीं है, यह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके आधार पर सूक्ष्म सिद्धान्तों द्वारा स्थूल लाभ प्राप्त किया जाता है। विज्ञान का आधार ही सूक्ष्म तत्वों से स्थूल लाभ प्राप्त करना है, आध्यात्म विज्ञान भी उस चिर सनातन आधार पर ही अवलंबित है।

प्रयोजन के अनुरूप ही साधन भी जुटाने पड़ते हैं। लड़ाई के लिए युद्ध सामिग्री जमा करनी पड़ती है और व्यापार के लिए उस तरह का सामान इकट्ठा करना होता है। भोजन बनाने वाला रसोई संबंधी वस्तुऐं लाकर अपने पास रखता है और चित्रकार को अपनी आवश्यक चीज जमा करनी होती हैं। व्यायाम करने की और दफ्तर जाने की पोशाक में अन्तर रहता है। जिस प्रकार की साधना करनी होती है उसी के अनुरूप उन्हीं तत्वों वाली, उन्हीं प्राणों वाली, उन्हीं गुणों वाली सामिग्री उपयोग में लानी होती है। सबसे प्रथम यह देखना चाहिए कि हमारी साधना किस उद्देश्य के लिए है, सत, रज, तम में से किस तत्व की वृद्धि के लिए है। जिस प्रकार की साधना हो उसी प्रकार की साधना सामिग्री व्यवहृत करनी चाहिए। नीचे इस संबंध में एक विवरण दिया जाता है :—

सतोगुण—

माला—तुलसी। आसन—कुश। पुष्प—श्वेत। पात्र—तांबा। वस्त्र—सूत (खादी) मुख—पूर्व को। दीपक में घृत—गौ घृत। तिलक—चन्दन। हवन में समिधा, पीपल, बड़, गूलर। हवन सामिग्री—श्वेत चन्दन अगर छोटी इलाइची, लौंग, शंखपुष्पी ब्राह्मी, शतावरि, खस, शीतलचीनी, आंवला, इन्द्र जौ, वंशलोचन, जावित्री, गिलोय, वच, नेत्रवाला, मुलहटी, कमल केशर, बड़ की जटाऐं, नारियल, बादाम, दाख, जौ, मिश्री।

रजोगुण—

माला—चन्दन। आसन सूत। पुष्प—पीले। पात्र—कांसा। वस्त्र—रेशम। मुख उत्तर को। दीपक में घृत—भैंस का घृत। तिलक—रोली। समिधा—आम, ढाक, शीशम। हवन सामिग्री—देवदारु, बड़ी इलाची, केशर, छार छबीला, पुनर्नवा, जीवन्ती, कचूर, तालीस पत्र, रास्ना, नागर मौथा, उन्नाव, तालमखानो, मोचरस, सौंफ, चित्रक, दालचीनी, पद्माख, छुहारा, किसमिस, चावल, खांड़।

तमोगुण—

माला—रुद्राक्ष। आसन—ऊन। पुष्प—हलके या गहरे लाल। पात्र—लोह। वस्त्र—ऊन। मुख—पश्चिम को। दीपक में घृत—बकरी का। तिलक—भस्म का। समिधा—वेल, छोंकर, करील। सामिग्री—रक्त चंदन, तगर, असगंध, जायफल, कमलगट्टा, नागकेशर, पीपल बड़ी, कुटकी, चिरायता, अपामार्ग, कागड़ासिंगी, पोहकर मूल, कुलंजन, मूसली स्याह, मेंथी के बीज, काकजंघा, भारंगी, अकरकरा, पिस्ता, अखरोट, चिरौंजी, तिल, उड़द, गुड़।

गुणों के अनुसार साधना सामग्री उपयोग करने से साधक में उन्हीं गुणों की अभिवृद्धि होती है तदनुसार सफलता का मार्ग अधिक सुगम होजाता है।

गायत्री की आरती।

वन्दे गायत्रीं, वन्दे गायत्रीम् ।

गायन्तं त्राता त्वं, गायन्तं त्राता त्वं, नमामि चिच्छक्तिम् । वन्दे गायत्रीं, वन्दे गायत्रीम् ॥

यत्तद्भर्गस्तपति, रविमण्डलमध्ये, रविमण्डलमध्ये ।

तदधिष्ठात्री शक्ति, तदधिष्ठात्री शक्ति, सा त्वं सावित्री ॥ वन्दे०

सर्गस्थितिलयकर्त्री, त्वमसि हि चिन्माया, त्वमसि हि चिन्माया ।

सत्यचिदानंदमयी, सत्यचिदानंदमयी, निगमागमरूपा ॥ वन्दे०

जगदाश्रयं वरेण्यं, सृष्टेराधारः, सृष्टेराधारः ।

भर्ग साक्षाद्रूपं, भर्ग साक्षाद्रूपं, कर्मदहन भूतं ॥ वन्दे०

ज्ञानस्वरूपे देवि, स्वानन्दे वससि, स्वानन्दे वससि ।

देवस्य धीमहि, देवस्य धीमहि, त्वमसि जगज्जननी ॥ वन्दे०

यो नो धियः इति, बुद्धी प्रेरयसि, बुद्धी प्रेरयसि ।

धीमहीति ध्याता, धीमहीति ध्याता, मन्त्रमयी शक्तिः ॥ वन्दे०

निर्गुणरूपे धात्री, गुणमय जगदम्ब, गुणमय जगदम्ब ।

हंसारूढे भगवति, हंसारूढे भगवति, ॐ कारैकभवे ॥ वन्दे०

सायं केशव रूपे, मध्ये हररूपे मध्ये हररूपे ।

प्रातर्ब्रह्मस्वरूपे, प्रातर्ब्रह्मस्वरूपे, वृषगरुडारूढे ॥ वन्दे०

हिरण्मयं पात्रं त्वं, सत्ये विहितास्यं, सत्ये विहितास्यं ।

योसावादित्ये इति, योसावादित्ये इति, ब्रह्ममयं रूपम् ॥ वन्दे०

वरेण्यस्य सवितुः, चित्रां सुमतिं त्वां, चित्रां सुमतिं त्वां ।

सावित्रीम् वृणेहं, सावित्रीम् वृणेहं, पीतां शतधाराम् ॥ वन्दे

यामस्य कण्वो अदुहत्, सात्वं गोरूपा, सात्वं गोरूपा ।

मन्त्रार्थमयि देवि, मन्त्रार्थमयि देवि, जय कर्पूराभे ॥ वन्दे

इषे त्वा, ऊर्जे त्वा, जय अग्नि मीले, जय अग्नि मीले ।

अग्ने आयाहि त्वं, अग्ने आयाहि त्वं, शन्नो देवीति ॥ वन्दे

तव गुण गणने मातः, ननु कोऽपि दिनेशः, ननु कोऽपि दिनेशः ।

विश्वामित्र वसिष्ठौ, विश्वामित्रवसिष्ठौ, ब्रह्मा किमु शेषः ॥ वन्दे

तत्त्वमसि तत्त्वमसि, त्वं प्रज्ञानं ब्रह्म, त्वं प्रज्ञानं ब्रह्म ।

अयमात्माहं ब्रह्म, अयमात्माहं ब्रह्म, सोहं सोहमिति ॥ वन्दे

अयि कृपया पाहि त्वं, देवि त्राता त्वं, देवि त्राता त्वं ।

जय जय जय चिद्धिवे, जय जय जय चिद्धिवे, अम्बजनन हरिणि ॥ वन्दे०